हिन्दी की
प्रतिनिधि कहानियाँ

Hindi ki pratinidhi kahāniyām

हिन्दी की
प्रतिनिधि कहानियाँ

Vatsyayan, Sachchidanand Hiranand.

संकलनकर्त्ता और सम्पादक

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

कृष्णाचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

प्र ग ति प्र का श न

नयी दिल्ली

प्रथमावृत्ति ४०००

मूल्य ~~एक रुपया चौदह आने~~
प्रकाशक—प्रगति प्रकाशन, ७/२३ दरियागंज, दिल्ली।
मुद्रक—हिन्दी मन्दिर प्रेस, दिल्ली।

समर्पण

यह संकलन
स्वर्गीया श्रीमती होमवती देवी की स्मृति को
संगृहीत लेखकों तथा सम्पादकों की ओर से
श्रद्धापूर्वक समर्पित है

यह संकलन हिन्दी साहित्य परिषद मेरठ के उद्योग से प्रकाशित हो रहा है। संगृहीत लेखकों और सम्पादकों को इस से मिलने वाला सम्पूर्ण पुरस्कार अथवा लाभांश उन के द्वारा उक्त परिषद् को देवंगता होमवती जी की समृत्ति-रक्षा के निमित्त दान किया जा रहा है।

प्रकाशकीय

कहानी-संग्रहों से पटे हुए साहित्य-पथ पर यह एक संग्रह और क्यों खड़ा हुआ, यह जिज्ञासा स्वाभाविक है।

प्रस्तुत संग्रह की दो विशेषताएँ हैं। पहली तो यह कि संग्रह एक संस्था--हिन्दी साहित्य परिषद्, मेरठ--के उद्योग से तैयार किया जा रहा है, और उसका उद्देश्य है एक साहित्य निर्मात्री की स्मृति-रक्षा के लिए अन्य साहित्य निर्माताओं के स्वेच्छिक सहयोग और सम्प्रदान से आवश्यक साधन जुटाना। यह उद्देश्य श्लाघ्य है और इस उद्योग को उन सब का अनुमोदन मिलना चाहिए जिन के अनुमोदन से वह सफल हो सकता है।

दूसरी विशेषता यह है कि यह हिन्दी कहानी का निराडम्बर किन्तु प्रतिनिधि संग्रह है। भूमिका में कहानी का पाश्चात्य और भारतीय परम्परा की संक्षिप्त रुप-रेखा है, जिससे हिन्दी कहानी को पूरे परि-पार्श्व में देखने में सहायता मिलती है, मुख्य प्रवृतियों तथा लेखकों के गुण-दोष का भी संक्षिप्त विवेचन दिया गया है। संकलन में यह उद्योग किया गया है कि प्रतिनिधि होते हुए भी कहानियां अतिपरि-चित न हों, और साथ ही कहानी के विभिन्न प्रकारों का उदाहरण भी प्रस्तुत कर दें। कुछ कहानियों की आवृत्ति हो जाना तो अनिवार्य है फिर भी यह संग्रह प्रतिनिधित्व के साथ कुछ नयापन भी ले कर आयगा ऐसा हमारा विश्वास है। सम्पादकों का संयोग कहानी-लेखक सम्पादन, समीक्षा, और अध्यापक के चतुर्विध अनुभव को एकत्र करता है।

सूची

भूमिका

कहानी का उद्गम

हम सभी अपने शैशव -काल से ही कहानियाँ सुनना आरम्भ कर देते हैं—दादियों से, माँओं से, घर की बड़ी-बुढ़ियों से, कभी-कभी आयु में कुछ ही बड़े संगियों से । 'नानी की कहानी' मुहावरा ही हो गया है क्यों कि कहानी के साथ हमारा पहला मानसिक सम्बन्ध ऐसे ही किसी निमित्त से होता है,इतना ही नहीं, शैशव-काल में सुनी हुई कहानियाँ हमारी कल्पना और हमारे कौतूहल को जैसे उकसाती हैं, उस का हमारे व्यक्तित्व के निर्माण और विकास पर स्थायी प्रभाव पड़ता है, यहाँ तक कि यह भी कहा जा सकता है कि हम बचपन में जैसी कहानियाँ सुनते हैं, बड़े होकर वैसे ही हो जाते हैं ।

और कहानी किसी वर्ग या जाति या देश -काल की सीमाओं से बँधी नहीं है, सभी वर्गों और जातियों में कहानी कही और सुनी जाती है, हाँ, स्थान, शिक्षा, मानसिक परिपक्वता और सामाजिक वातावरण आदि से कहानी का ढंग प्रभावित होता है ।

जिस वय में कल्पना का विकास होता है उस में बालक कहानियाँ सुनते ही नहीं, कहते भी हैं, और श्रोता न हो तो स्वयं अपने-आप से कहते हैं । बच्चों का डींगे हाँकना, या बड़ी-बड़ी बातें बनाना भी कहानी कहने का एक रूप है, और बच्चों के व्यक्तित्व के विकास का एक लक्षण । बच्चों की गढ़ी हुई कहानियों से हम उन के चरित्र के विकास को समझ

सकते हैं, और वस्तु-स्थिति---घटना समाज, घरेलू जीवन, व्यक्तिगत अनुभव आदि---के प्रभावों को ग्रहण करने की उन की योग्यता और प्रणालियों का अध्ययन कर सकते हैं। इसी प्रकार हम किसी जाति या वर्ग की कहानियों के अध्ययन से उस के मानसिक गठन को समझ सकते हैं---विशेष कर कम विकसित जातियों के; जिन की मन; प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ बच्चों के ही समान होती हैं।

इस से यह तो स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कहानी मानव समाज के आदि काल से ही चली आयी है, और समाज-जीवन में उस का महत्व पूर्ण स्थान रहा है---केवल मनोरंजन या कौतूहल के लिए नहीं, वरन समाज के मानसिक संगठन की सूचक और आशा आकाक्षांओं के माध्यम रुप में।

कहानी की परम्परा

यहाँ कहानी शब्द का प्रयोग एक साधारण अर्थ में किया जा रहा है, उस विशिष्ट अर्थ में नहीं जिस के लिए अंग्रेज़ी में शार्ट 'स्टोरी और' भारतीय भाषाओं में 'गल्प', 'कहानी', 'लघु-कथा' आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। उस विशिष्ट रुप को परिभाषा हम आगे चल कर करेंगे। इस साधारण अर्थ में कहानी की परम्परा बड़ी लम्बी है, और भारत में ही उस के आदि सूत्र प्रागैतिहासिक काल के धुँधले में खो गये हैं। वैदिक साहित्य सुन्दर, छोटी और अत्यन्त प्रभावशाली कहानियों का अमूल्य भंडार है उपनिषदों, ब्रह्माण गन्थों और आरण्यकों में भी कितनी ही अत्यन्त मार्मिक कहानियाँ बिखरी पड़ी हैं। कदाचित् समूचे सभ्य जगत् में कहानी प्राचीन भारतीय स्त्रोतों से ही फैली, इस में तो सन्देह नहीं कि ईसप की कहानियों जैसी कहानिनाँ, जो संसार में दूर-दूर तक पायी जाती हैं, अपने मूल-रुप में संस्कृत पंचतन्त्र से ही ली गयी थी। पुराण तो आद्यन्त कथा-गर्भित हैं। महाभारत अकेला ही इतनी कथाओं का भंडार है कि

शदियों से लेखकों को प्रेरणा देता रहा है और अभी और शताब्दियों तक देता रहेगा।

बौद्ध साहित्य में जातक कथाएं प्रसिद्ध ही हैं, बौद्ध और जैन परम्परा में उदाहरण और दृष्टान्त का बहुत महत्व रहा और पद-पद पर कथा से काम लिया गया। परवर्त्ती जैन साहित्य की कथाएँ तो भारतीय कहानी परम्परा में बहुत-महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, और उन का अध्ययन सिद्ध करता है कि यद्यपि आधुनिक काल में कहानी को यूरोपीय कहानी साहित्य से प्रेरणा मिली और उस का प्रभाव भी पड़ा, तथापि भारत में कहानी की अपनी एक अटूट परम्परा रही।

संस्कृत साहित्य में 'बृहत् कथा-सरित-सागर', 'द्वात्रिंशत् पुत्तलिका', 'वैताल-पंचविंशति :', 'पंचतन्त्र', 'दशकुमार-चरित', आदि कथा ग्रन्थ है ही; इन में से अधिकतर हिन्दी में भी अनुदित हुए। हिन्दी के आरम्भकाल की मौलिक कहानियाँ नहीं उपलब्ध होतीं, अधिकतर संस्कृत साहित्य से, अथवा पाली या अपभ्रंश के बौद्ध जैन साहित्य से, अनुवाद ही होते रहे। किन्तु जिस भाषा को आज हम हिन्दी के नाम से जानते हैं, उस भाषा के आरम्भ हो जाने पर भी इस स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, उस काल का कहानी साहित्य भी मुख्यतया अनुवाद है और कभी कभी रुपान्तर या छाया। बहुत थोड़ी मात्रा में चमत्कारानुप्राणित कहानियाँ-भर लिखी गयीं, इस प्रकार की इनी-गिनी कहानियाँ हस्त-लिपियों में पाई जाती हैं। सम्भव है कि हस्त लिखित कहानी साहित्य पर विशेष खोज होने पर इस काल के कृतित्व पर अधिक प्रभाव पड़े, और हम कहानी की प्राचीन परम्परा के साथ आधुनिक कहानी का सम्बन्ध निरुपण ठीक ढंग से कर सकें।

आधुनिक कहानी : पाश्चात्य परम्परा

हम कह आये कि कहानी तो आदि काल से चली आयी है। पर उसका वह विशिष्ट प्रकार जिसे आधुनिक काल में 'कहानी' की अभिधा

दी जाती है, उतना पुराना नहीं है। एक जागरुक कलाकार द्वारा कौशल पूर्वक-रचित कलावस्तु के रुप में कहानी या गल्प का आविर्भाव लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले हुआ, भारत में यह परम्परा इस से प्रायः आधी होगी और हिन्दी में कुछ और कम।

विदेश में कहानी का यह आधुनिक उत्थान अमरीका के लेखक एडगर एलन पो (सन् १८०६-४६) से आरम्भ होता है। पो की कहानियाँ आतंक हत्या, रहस्य आदि के विषय ले कर चलती थीं और उनका वातावरण डरावना और रोमांचकारी होता था। फ्रांस और इंगलैंड के कई लेखकों पर पो का प्रभाव पड़ा।

आधुनिक कहानी ने अमरीका में जन्म लिया, अमरीका में ही वह पनपी और विकसित हुई। वहाँ के जीवन की रंगीनी, चपलता, आशा-मयता, क्रियाशीलता और द्रुत गति इस नये माध्यम के अधिक अनुकूल थीं फ्रांसिस ब्रेट हार्ट (सन् १८३९-१९०२) दूसरे सफल लेखक हुए, और ओ० हेनरी में आकर अमरीकी कहानी अपने उत्कर्ष पर पहुंची। ब्रेट हार्ट ने नयी ज़मीन तोड़ने वाले साहसिक मज़दूरों के जीवन का वर्णन किया. रुखे बहिरंग के भीतर छिपी हुई कोमलता या सरसता उस का प्रिय विषय था। ओ० हेनरी ने नागरिक जीवन के सुन्दर और गतिमय चित्र उपस्थित किये। घटना के अप्रत्याशित घुमाव, एक विशेष प्रकार की वक्रता और व्यंग्य हेनरी की कहानी की विशेषताएँ हैं। अमरीका में कहानी अब भी एक सजीव और विकासशील माध्यम है, यद्यपि पत्र-पत्रिकाओं में ढर्रे पर चलने वाली कहानियों की भरमार होती है। स्टीनबेक, सरोयान प्रभृति लेखक उच्च कोटी के कहानी लेखक हैं।

अमरीका से यह कला रुप फ्रांस में फैला। वहाँ के बौद्धिक वातावरण में बड़ी जल्दी पनपा, और शीघ्र ही उसने व्यंग्य शैली के एक महान कलाकार को जन्म दिया। गी द मोपासाँ (सन् १८५०-९३) की कहानियाँ अपने यथार्थ और चमक के लिए अद्वितीय हैं। उस के पात्र साधारण होते

है, पर एक निष्कम्प कठोरता के साथ वह उन्हें एक अनिवार्य निष्पत्ति की ओर ले जाता है, जो प्रायः अप्रीतिकर होती है। उस का निर्मम और तीखा व्यंग्य उल्लेखनीय है।

उन्नीसवीं शदी के अन्तिम दिनों में कहानी इंगलैंड में भी बहुत लोकप्रिय हुई, और कई प्रसिद्ध लेखकों ने उसे अपनाया, जिन में स्टीवन्सन कोनन डायल, किपलिंग, वेल्स आदि उल्लेखनीय हैं।

रुसी साहित्य में कहानी ने विशेष उन्नति की। रुसी कहानी ने कई प्रकार अपनाये, और कम से कम एक ऐसा कहानीकार उत्पन्न किया जो विश्व में अपना सानी नहीं रखता। एंटन चेखोव (सन् १८६०-१९०४) की कहानियों की विशेषतः है बहुत छोटी-छोटी, नगण्य घटनाओं के द्वारा चरित्र का सूक्ष्म उद्घाटन। वैसी गहराई और बारीकी, वैसा कसाव और शब्द-संयम बहुत कम लेखकों में पाया जाता है। चेखोव ने अपने देश के बाहर भी कई लेखकों को प्रभावित किया, जिन में ब्रिटेन की कैथराइन मैंसफील्ड (सन् १८८८-१९२३) उल्लेखनीय हैं, पर यह प्रभाववादी पद्धित अब ह्रास पर ही है। रुसी लेखकों में तुर्गेनेव का मँजाव और कलात्मक सम्पूर्णता भी उल्लेख्य है। व्यंग्य और विडम्बना में भी रुसी कहानी ने विशेष उन्नति की। परवर्ती लेखकों में गौर्की महान् लेखक हुआ।

आधुनिक कहानी श्रेष्ठ लेखकों में सुगठित घटना-क्रम, प्रभावोत्पादक स्थिति अथवा सरल, स्पष्ट चरित्र के लिए विशेष आग्रह नहीं है। जीवन की एक द्रुत झांकी, स्वभाव, चरित्र या मनःस्थिति को सहसा आलोकित कर देने वाला कोई क्षण—इन्हें ही आधुनिक कहानी लेखक चुनता है। बहुत कुछ इसका कारण मनोविज्ञान की प्रगति है। मनोविश्लेषण ने जहाँ एक ओर हमें दिखाया है कि मानव-मन कितना जटिल है और उसके कर्म की अन्तः-प्रेरणाएँ कितनी उलझी हुई हो सकती हैं, उसके चेतन और अवचेतन का आसमंजस्य उसके कार्यों को कितना

दुर्बोध और रहस्यमय बना सकता है, वहाँ दूसरी ओर उसी विज्ञान ने हमें एक ऐसी पद्धति भी दी है, जिसके सहारे हम छोटे छोटे संकेतों के द्वारा उस छिपे हुए संघर्ष को समझ सके, और व्यक्तित्व के उलझे हुए सूत्रों को सुलझा सकें। इस प्रकार मनोविज्ञान ने हमें नयी गहरी दृष्टि दी है, जिसका भरपूर लाभ आधुनिक कहानी लेखक उठाता है।

मनोविज्ञान ही नहीं, आधुनिक कहानीकार ने अन्य विज्ञानों की प्रगति से भी लाभ उठाया है। कहानी की वस्तु पर भी ईन विज्ञानों का प्रभाव पड़ा है, और शैली पर भी। पदार्थ-विज्ञान के आविष्कारों को लेकर एच० जी० वेल्स ने जो कौतुहलोत्पादक और विचारोत्तेजक कहानियाँ लिखीं, वे उसका इदाहरण हैं।

आधुनिक कहानी : हिन्दी

हिन्दी मे आधुनिक कहानी की परम्परा बीसवीं शदी से पूर्व नहीं जाती। प्राचीन कथा-साहित्य से वह समबद्ध है अवश्य, पर उसके रुप का विकास उस व्यापक पुनरुस्थान का ही एक पक्ष है जो उन्नीसवीं शदी के अन्तिम दिनों और बीसवीं के पहले दशक में भारतीय जोवन के हर अंग को प्रभाविन करने लगा। और मानना होगा कि इसे पाश्चत्य साहित्य से बहुत प्रेरणा मिली : कुछ तो प्रत्यक्ष और कुछ बँगला से छन कर, क्योंकि अंग्रेजों और अंग्रेजी के साथ कलकत्ते के प्राचीनतर परिचय के कारण विदेशी प्रभाव प्राय: सभी पहले बँगला में प्रकट होते रहे।

देवकीनन्दन खत्री (सन् १८६१-१९१३) की 'चन्द्र कान्ता' और 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' जैसी रचनाएँ बहुत लोकप्रिय हुईं, किशोरीलाल गोस्वामी (सन् १८६५-१९३२) ने भी लगभग उसी समय कई उपन्यास लिखे। इन्हीं दिनों राम गोपाल गहमरी ने 'जासूस' का प्रकाशन आरम्भ किया था, इस पत्र में बँगला से अनूदित छोटी-छोटी जासूसी कहानियाँ रहती थीं। अनन्तर उन्होंने मौलिक कहानियाँ भी लिखीं।

बँगला से और भी कुछ अनुवाद इसी समय के आस-पास हुए। पर इन सब का ऐतिहासिक महत्त्व ही है, उन से साहित्य का कोई मार्ग नहीं बन पाया।

आधुनिक कहानी का उत्थान वास्तव में इसी शती के पहले दशक में हुआ। इलाहाबाद से 'सरस्वती' और काशी से 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ हुआ, इन दोनों पत्रिकाओं ने कहानी साहित्य को बड़ी प्रेरणा दी। 'सरस्वती' में पहले अनूदित कहानियाँ ही छपती रहीं, पर फिर मौलिक कृतियाँ भी आने लगीं, और 'आधुनिक' कहलाने योग्य पहली सर्वांगपूर्ण कहानियाँ उसी में प्रकाशित हुईं—कौशिक की 'रक्षा-बन्धन' (१९१३), गुलेरी की 'उस ने कहदा था' (१९१५) और प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' (१९१६), यद्यपि प्रेमचन्द उर्दू में इस से पहले से लिख रहे थे और ख्याति भी पा चुके थे। उधर 'प्रसाद' के निर्देशन में 'इन्दु' नयी प्रतिभाओं का निर्माण कर रहा था, और स्वयं 'प्रसाद' कथा साहित्य को एक नयी दिशा दे रहे थे। उन की पहली कहानी 'ग्राम' सन् १९११ में 'इन्दु' में छपी, अगले वर्ष पांच कहानियों का संग्रह 'छाया' नाम से प्रकाशित हो गया। इन कहानियों का वस्तु विन्यास भी और भाषा भी दोनों बँगला से प्रभावित थे, फिर भी 'प्रसाद' की मौलिकता की छाप उन पर स्पष्ट थी। 'इन्दु' के द्वारा ही और भी मौलिक कहानीकार हिन्दी में आये, जिन में राजा राधिकारमण प्रसादसिंह, विश्वम्भर नाथ जिज्जा और जी० पी० श्री वास्तव उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त दोनों पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'गृहलक्ष्मी' में भी कहानियाँ छपती थीं और उस के द्वारा भी लगभग इसी काल में या इन के पीछे कुछ और लेखक सामने आये—चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', गोविन्दवल्लभ पन्त और 'सुदर्शन। लेकिन 'कौशिक', गुलेरी, प्रेमचन्द और 'प्रसाद', ये चारों हिन्दी कहानी के आरम्भ के मुख्य नाम हैं। गुलेरी जी ने कुल तीन ही कहानियां लिखीं, पर उन तीनों में से

भी एक ऐसी सर्वांग सुन्दर रचना हुई कि कोई भी कहानी संग्रह उसे लिये बिना प्रतिनिधित्व का दावा नहीं कर सकता। अन्य तीनों लेखकों ने कहानियाँ यथेष्ट परिमाण में लिखी, और कहानी को एक सुस्पष्ट रूप दे दिया।

'प्रसाद' की कहानियों की शैली भाव प्रधान होती थी और भाषा काव्यमयी, अधिकतर कहानियाँ की घटना या तो किसी प्राचीन काल में या अपरिचित देश में स्थित होती थी : निरा कौतूहल या मनोरंजन कभी उन्हें अभीष्ट नहीं था, पर भाव सत्यों को ही प्राधान्य देते हुए वह उन्हें समकालीन सामाजिक स्थिति के आवेष्टन में नहीं दिखाते थे। कुछ कहानियों में अवश्य बहिरंग हमारे अपने समाज से लिया हुआ है, पर यहाँ भी समकालीन वस्तु केवल एक भाव सत्य को उद्घाटित करने का सहारा मात्र है, उस का अपना महत्व नहीं हैं। कुछ कहानियों में घटना बाहुल्य था तो कुछ में घटना का लगभग अभाव होता था और केवल वातावरण या भावावस्था ही प्रधान होती थी। विशद सुकुमार कल्पना, कवित्वमय कथोपकथन, आदि आदर्शोन्मुख दार्शनिक प्रवृत्ति—ये उनके कथा-साहित्य की विशेषताएँ हैं और उन की भाषा भी इनके अनुरूप गरिमामयी है। अमूर्त भावनाओं के आधार पर मूर्त की अभिव्यक्ति भी उन की भाषा की एक विशेषता है

प्रेमचन्द शैली, विधान भाषा और वस्तु सभी दृष्टि से 'प्रसाद' से भिन्न थे। उन की दृष्टि और प्रवृत्ति भिन्न थी। जातीय गौरव की भावना जहाँ 'प्रसाद' को अतीत गौरव कालों की ओर ले जाती थी, जिन में उनकी कल्पना स्वच्छन्द विचरण कर सके, वहाँ प्रेमचन्द में वही भावना राष्ट्रीय जाग्रति और राजनैतिक सुधार का उत्साह जगाती थी। समकालीन समाज के वैषम्य और अत्याचारों का विरोध, दलित देहाती समाज के प्रति गहरी सहानुभूति, राष्ट्रीय भावनाएँ, ये उन की कहानियों के विशिष्ट स्वर थे। उन की भाषा भी इन के अनुरूप सरल और प्रवाहमयी थी। उत्तर प्रदेश के साधारण बोल-चाल की यह भाषा उर्दू का

प्रभाव लिये थी—चुस्त, चुलबुली और मुहावरेदार। वातावरण या भाव प्रधान कहानियाँ प्रेमचन्द ने बिल्कुल नहीं लिखीं, उन की कहानियों में सर्वदा वस्तु प्रधान होती थी और स्पष्ट घटना क्रम नाटकीय कथोपकथन और सुधार-मूलक उद्देश्य उन के आधार होते थे। इस प्रकार आधुनिक कहानी की सम्भावनाओं के विस्तृत क्षेत्र का एक अंश ही उन्होंने चुना था, उस सीमित क्षेत्र में कहानी के विधान (टेकनीक) पर उन्हें पूरा अधिकार था। यों उनके मध्यवर्गीय पात्रों का चित्रण कभी कभी अस्वाभाविक और अयथार्थ भी हो जाता है, कहानियों में उनके पात्रों के चरित्र भी गत्यात्मक और विकासशील न हो कर स्थिर होते हैं—कहानी के अन्त में पात्र के जीवन की घटनाओं के विषय में तो हमारा ज्ञान बढ़ता है पर हम यह नहीं अनुभव करते कि हमारे सामने उसके चरित्र का कुछ नया उद्घाटन हुआ है कि हम उसे अधिक अच्छी तरह जान गये हैं। आज कहानी कला की दृष्टि से श्रेष्ठ उदाहरण कदाचित् प्रेमचन्द का न दिया जा सकेगा फिर भी अपने क्षेत्र में उन की ज्वलन्त मानवी सहानुभूति उन्हें कला की दृष्टि से अधिक सफल लेखकों से कहीं आगे ले जा रखती है। प्रेमचन्द निस्सन्देह हिन्दी के और भारत के महान् कहानी लेखक रहे।

'प्रसाद' और प्रेमचन्द अपने समय तक की कहानी की दो मुख्य प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। दोनों का अनुसरण भी हुआ, यद्यपि प्रसाद की भाव मूलक परम्परा को कम लोगों ने अपनाया, और यथार्थवादी परम्परा ज़ोरों से आगे चली। जो विशेषताएं प्रेमचन्द में सुन्दरता अथवा चरम रूप में लक्षित हुई, वे ही उस काल की काहनियों की विशेषताएँ मान ली जा सकती हैं—समकालीन सामाजिक कुरीतियों के सुधार का उत्कट आग्रह, दलित निर्धन देहाती के साथ सहानुभूति, राष्ट्रीय जागरण का जोश, और कथा शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्ति का एक स्पष्ट आकार। 'कौशिक' की कहानियां इसका अपवाद नहीं है और

सुदर्शन तो सम्पूर्णतया प्रेमचन्द के अनुवर्त्ती रहे। लेकिन इसके बाद हिन्दी कहानी द्रुत गति से नया विस्तार ग्रहण करने लगी, वस्तु और विधान दोनों की दृष्टि से उसने नयी दिशाओं में फैलना आरम्भ किया।

यह नया विकास किन कारणों से हुआ इस का कुछ संकेत तो हम पाश्चात्य परम्परा के निरुपण में कर चुके हैं। मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति इस का एक प्रमुख कारण थी। यों तो मनोविज्ञान का प्रयोग मानव जीवन के सभी अंगों या स्तरों को समझने के लिए किया गया, पर स्त्री पुरुष सम्बन्धों पर उसने विशेष रुप से ध्यान केन्द्रित कर दिया, और परवर्ती कहानी में काम अथवा प्रेम की वासना और उसकी विकृतियों का चित्रण बहुत हुआ। इसी प्रकार समाज शास्त्र के विकास से और विशेपतया आर्थिक-दर्शन के और उस के अन्तर्गत मार्क्सीय मत की प्रगति से सामाजिक सम्बन्धों पर जो नया प्रकाश पड़ा, और उनके अध्ययन की जो नयी पद्धतियाँ आविर्भूत हुई, वे भी कहानी में प्रतिबिम्बित हुई। सापेक्ष्यवाद के व्यापक अर्थों को समझ कर साहित्यकार नैतिक मान्यताओं की नयी पड़ताल करने लगे, और इस से भी कहानी में एक नयी चीज़ पैदा हुई। इससे पहले कहानीकार की सहानुभूति स्पष्ट होतीं थीं, क्यों कि उस आधारभूत नैतिक मान्यताएँ भी निस्संशय होती थी लेकिन अब उस के मन में उन मान्यताओं के सम्बन्ध में तरह तरह की शंकाएँ उठने लगीं, और इस लिए व्यक्तिगत सामाजिक या अन्य मानवीय सम्बन्धों पर वह उतना स्पष्ट निर्णय देने में झिझकने लगा उस की दृष्टि अधिक व्यापक हुई, सहानुभूति अधिक उलझी हुई, ऊहापोह बढ़ा और निर्णय एक अस्थायी स्थागित अवस्था में छोड़ दिये जाने लगे। साधारणतया कहा जा सकता है कि इस प्रकार कहानी अधिक बौद्धिक हो गयी। इस में एक ओर अव्यवस्था फैलना स्वाभाविक था, और नैतिक मूल्यों को अन्ध श्रद्धापूर्वक न स्वीकार करने का विकृत रूप एक प्रकार का अनाचारवाद हो ही सकता है, पर जो

लेखक युग के नये विचारों के गम्भीरतर अभिप्राय समझते थे उन्होंने उत्तरदायित्वपूर्वक अपने काल की समस्याओं का सामना किया और उन की कहानियों में एक सर्वथा नये प्रकार की बौद्धिकता रहते हुए भी रस अथवा रोचकता की कमी नहीं हुई।

दूसरी ओर इस संशयात्मकता अथवा स्थगित-निर्णय की स्थिति की प्रतिक्रिया में उग्रतर मताग्रह का आना भी स्वाभाविक था, विज्ञान की प्रत्ेक नयी खोज के मताग्रही भी प्रकट हुये और नयी बौद्धिक कहानी में मतवादों या पद्धतियों का आरोप इस सीमा तक भी पहुंचा कि वे फिर अबौद्धिक हो गयीं—कथाकार का मानसिक खुलापन नहीं रहा और उस की सहानुभूति कड़ी लीकों में पड़ गयी। मनोविज्ञान और अर्थ-दर्शन दोनों के क्षेत्रों में यह अनुदारता लक्षित हुई। किन्तु विभिन्न प्रवृत्तियों के विकृत रूपों को न देख कर हम उन्नति की परम्परा की ओर ही ध्यान दें, तो कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के वाद कहानी में आश्चर्यजनक प्रगति हुई।

कहानी के रुप-विधान पर भी बाहर के प्रभाव पड़े। विदेशीं साहित्यों के अनुवाद का सीधा-सीधा प्रभाव पड़ा : फ्रांसीसी और रूसी कहानियों के अनुवादों से हिन्दी कहानीकार ने नयी वस्तु का समावेश करना तो सीखा ही, विधान की दृष्टि से बहुत शिक्षा ग्रहण की। साथ ही फ्रांसीसी साहित्य की स्वच्छन्दता से कई ऐसे बन्धन सहसा ही टूट गये जो साधारणतया धीरे-धीरे टूटते : लेखक ने एक नयी स्वाधीनता पा ली जिस के लिए वह स्वाभाविक रुप से तैयार नहीं हुआ था, फलतः कहानियों में नग्न वर्णन और भोड़ेपन को भी प्रश्रय मिला।

विदेशी प्रभावों के अतिरिक्त बंगला का प्रभाव भी उल्लेखनीय है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों का अनुवाद यद्यपि शती के आरम्भ में ही शुरु हो गया था, पर उस का प्रभाव दूसरे-तीसरे दशक में ही जा कर हुआ। कवि ठाकुर ने जिस तरह उस काल के हिन्दी कवि पर गहरा

प्रभाव डाला, उसी प्रकार कहानीकार ठाकुर ने तत्कालीन कहानी–लेखकों पर : ठाकुर का समकक्ष दूसरा कहानीकार भारतवर्ष में नहीं हुआ, और उनकी कहानियों की वस्तु और विधान दोनों का वैविध्य प्रेरणा देने वाला था। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय का प्रभाव भी उल्लेखनीय है, यद्यपि वह सर्वथा ही हुआ ऐसा नहीं कहा जा सकता।

प्रेमचन्द के बाद की प्रगति को मोटे तौर पर चार धाराओं में बाँटा जा सकता है, और चारों का एक-एक प्रतीक लेखक ले लिया जा सकता है।

जैनेन्द्र कुमार ने कहानी के माध्यम के लचकीलेपन का पूरा उपयोग किया। घटना की कहानी से बढ़ कर चरित्र की कहानियाँ, वातावरण की कहानियाँ, शुद्ध मानसिक ऊहापोह की कहानियाँ उन्होंने लिखीं, साथ ही कहानी के पुराने रूपों का भी उन्होंने नये ढंग से उपयोग किया— वार्ता और दृष्टान्त लिखे, सांकेतिक और प्रतीकात्मक कहानियां लिखीं, कहानी से उपदेश और प्रवचन का काम लिया। कहीं निर्मम वस्तु-निष्टा से काम लिया तो कहीं वास्तव की उपेक्षा करके मुक्त कल्पना से काम लिया, गायों और चिड़ियों से बातें करवायीं। शैली की दृष्टि से भी उन्होंने अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखीं : पत्रों के रूप में, आत्म-कथा के रूप में, संवाद के रूप में, स्वागत-भाषण के रूप में, इत्यादि। जैनेन्द्रकुमार की कहानियाँ आश्चर्यजनक विधान-कौशल और हस्त-लाघव का परिचय देती हैं, और विधान की दृष्टि से उन्होंने हिन्दी कहानी को जितना आगे बढ़ाया उतना किसी एक अन्य व्यक्ति ने नहीं। वस्तु की दृष्टि से उनकी रुचि मुख्यतया नैतिक प्रश्नों और नीति के बुनियादी मूल्यों में रही हैं।

'अज्ञेय' मुख्यतया व्यक्ति-चरित्र के कहानीकार हैं। व्यक्ति के स्वाभाव और कर्म प्रेरणाओं का सूक्ष्म विश्लेषण उनकी कहानियों में मिलता है। उन्होंने भी कई प्रकार की कहानियाँ लिखी है। और कहानियों के निर्माण में असाधारण विधान-पटुता का परिचय दिया है। सामाजिक वैषम्य और संघर्षों का चित्रण उनकी कहानियों में होता है, अन्याय के प्रति विद्रोह का स्वर भी कई कहानियों में प्रबल है, पर 'अज्ञेय' की

दृष्टि मूलतया कवि की दृष्टि है, सामाजिक संघर्षों के व्यक्तिगत पहलुओं को ही वह अपना विषय बनाते हैं। 'अज्ञेय' का गद्य अपने ढंग का अद्वितीय है, उन की भाषा काव्यमयी नहीं है पर उसका एक अपना छन्द है—उसका संयत, गम्भीर माधुर्य गद्य की लयमयता का अच्छा उदाहरण है। जैनेन्द्रकुमार की भाषा में एक अटपटा भोलापन है जो अनुकूल स्थलों में बड़ा मोहक मालूम होता है पर कहीं-कहीं बहुत बेमेल हो जाता है और व्यक्ति-वैचित्रय के कारण बनावटी जान पड़ता है। 'अज्ञेय' की भाषा सर्वत्र गम्भीर और संयत रहती हुई विषय और वस्तु के साथ काफी बदलती रहती है। भाषा की भांति 'अज्ञेय' के कथा-विधान में भी सदैव एक सफ़ाई और परिस्कार (फ़िनिश) रहता है।

यशपाल मुख्यतया समाजालोचन के कहानीकार हैं। उन की कहानियों में मनोविश्लेषण बहुत रहता है, और व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओं का विवेचन वह बराबर एक पैने व्यंग्य के साथ करते हैं, अनेक स्थलों पर स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों का उन का वर्णन नग्न भी हो जाता है, फिर भी उन का लगाव व्यक्ति के कर्मों के पीछे लक्षित होने वाली निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियों में ही है। यशपाल कहानी के कुशल शिल्पी हैं, पर उन में जैनेन्द्र अथवा 'अज्ञेय' का-सा विधान-कौशल और उर्वरता नहीं है। भाषा को या गद्य को वह कोई स्वतन्त्र महत्व नहीं देते।

प्रतीक-रूप से इन तीनों के बाद एक और क्षेत्र का उल्लेख आवश्यक है : साधारण घरेलू जीवन के चित्र। हिन्दी कहानी-लेखिकाओं में प्रायः सभी ने केवल यही क्षेत्र अपनाया है, यद्यपि कुछ ने कौतूहलोत्पादक या रूमानी वातावरण की सृष्टि को ही मुख्य स्थान दिया है, यथा उषादेवी मित्रा। इस क्षेत्र में कोई एक लेखिका इतनी विशिष्ट नहीं है कि उसे प्रतीक-रूप से उपस्थित किया जा सके, परिमाण की दृष्टि से कदाचित् होमवती जी ही सब से अधिक उल्लेखनीय हैं। सत्य-

वती मलिक में कलामयता अधिक है, कमला चौधरी में रंगीनी और विविधता, पर होमवती के घरेलू चित्रों में एक निपछल अपनापन और समवेदना का सहज प्रवाह है जो पाठक को तुरत प्रभावित कर लेता है।

अभी तक हम कहानी के कुछ मुख्क प्रभावों का ही विचार करते रहे हैं। पर कहानी का विकास उसे कथा अथवा इतिवृत्त के स्पष्ट आकार से बहुत दूर ले गया है, और अब कई प्रकार के रेखा-चित्र, व्यंग्य-चित्र, संस्मरण आदि भी उस के अन्तर्गत आते हैं। चित्रकला से तुलना करें तो कहा जा सकता है कि सर्वांगपूर्ण रंगीन चित्र ही नहीं, अब स्याहकलम, खाके, शबीहें, प्रकाश-छाया के संकेत भी स्वीकृत कला-रूप हो गये हैं। इधर के कुछ संग्रहों के शीर्षक भी इस प्रवृत्ति के सूचक है—'सीधे-सादे चित्र', (सुभद्राकुमारी चौहान), 'स्मृति की रेखाएँ' (महादेवी वर्मा) इत्यादि। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की जो कहानी यहां दी गई है, वह एक रेखा-चित्र ही है।

संक्षेप में यह आधुनिक कहानी की रूप रेखा है। लेखकों के नाम गिनना यहां अभीष्ट नहीं था, मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन ही हम कर रहे थे, अतः अनेक महत्वपूर्ण नामों का छूट जाना स्वाभाविक ही था। इस में उनके कृतित्व के प्रति अवज्ञा नहीं है।

कहानी के तत्व

आधुनिक कहानी में इतना वैविध्य है कि उस की एक छोटी-सी परिभाषा करना कठिन है। इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य-प्रकार में एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है, और उस के द्वारा चुनी गयी वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन। वह प्रभाव, और उस प्रभाव की ऐकान्तिकता ही मुख्य है, उसे प्राप्त करने के लिए शैली, विधान आदि के बारे में वह पूरी तरह स्वतन्त्र है। हां, जैसे और साहित्य-प्रकारों में यह देखना होता है कि

अमुक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अमुक साधन ही क्या सर्वोत्तम साधन है, और उस का अमुक प्रयोग ही क्या सर्वोत्तम प्रयोग है, उसी प्रकार कहानी में भी। रचना-कौशल, भाषा-सौष्ठव, शब्द-संयम इत्यादि गुण कहानी में भी उतना ही महत्व रखते हैं जितना दूसरे प्रकारों में, बल्कि उसके संक्षेप के कारण उन का कुछ अधिक ही महत्व हो जाता है। चरित्र का विकास दिखाने का विस्तार न होने के कारण कहानी को रचना-कौशल पर बहुत अधिक निर्भर करना पड़ता है—मूल विचार-वस्तु बस से पुष्ट होती है, जैसा छोटी कविता में होता है। इसी प्रकार भाव-वस्तु या वातावरण को शैली पुष्ट करती है—उस में तीव्र गति हो सकती है, या गम्भीर्य या मँजाव या भोलापन। लेकिन प्रभाव की ऐकान्तिकता के लिए रचना का ही सब से अधिक महत्व है।

रचना की दृष्टि से किसी भी अच्छी कहानी को कुछ स्पष्ट पहचाने जाने वाले अंगों में बांटा जा सकता है। प्रत्येक में कथोपकथन और घटना-प्रवाह द्वारा नयी उत्तेजना और उत्तेजना का आंशिक शमन भी होता रहता है, और एक सम्पूर्ण प्रभाव की ओर कहानी बढ़ती जाती है।

१. आरम्भ : आवश्यक पात्र-परिचय अथवा कहानी के भाव अथवा विचार-वस्तु का ऐक संकेत इस में होता है।

२. प्रथम मुख्य घटना : जिस में केन्द्रीय भाव या विचार की सूचना होती है।

३. द्वितीय मुख्य घटना : जिस में अनपेक्षित या विस्मय का अंश होता है, और जिस के द्वारा विचार कुछ अधिक स्पष्ट होता है।

४. तृतीय मुख्य घटना : जिस में कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है, और विचार बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

५. : निष्पत्ति या अन्त : कहानी का कार्य सम्पूर्ण होता है, और उस का पूरा अभिप्राय प्रकट हो जाता है।

संक्षेप में कहानी के गठन के सूत्र यही हैं, और किसी भी कहानी की रचना का विश्लेषण इसी आधार पर हो सकता है। और कोई बन्धन कहानी की रचना पर नहीं लगाया जा सकता; यों इन अंगों की पुष्टि कई तरह से हो सकती है। कहानी के उपकरणों में से किसी एक या एकाधिक पर लेखक बल दे सकता है। इन उपकरणों में कथावस्तु पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, स्थिति अथवा वातावरण, और भाषा तथा शैली प्रधान हैं। कथानक के अनुकूल देश-काल-परिस्थित का निर्माण स्थिति के अन्तर्गत आता है। पुरानी कहानियों में निष्कर्ष अथवा उपदेश भी एक आवश्यक उपकरण था, पर आधुनिक कहानी में वह कोई महत्व नहीं रखता।

कहानी का विधान विभिन्न प्रकार का हो सकता है और उस में विभिन्न तत्वों को प्रधानता दी जा सकती है, यह कहा जा चुका है। यथा कहानी विशुद्ध कथोपकथन के सहारे चल सकती है, या पात्रों के द्वारा, या संस्मरण के, या निरे वर्णन के द्वारा भी, उस में घटना प्रधान हो सकती है, अथवा चरित्र-चित्रण, या प्रभावोत्पादक कथोपकथन, या केवल स्थिति या वातावरण ही। ऐसी भी कहानी हो सकती है जिस में शैली का सौन्दर्य ही प्रधान हो, घटना लगभग हो ही नहीं। आधुनिक कहानीकार ने इन सभी प्रकारों का अन्वेषण किया है, जब तक कहानी अपने ऐकान्तिक प्रभाव के उद्देश्य में सफल होती है तब तक और कोई भी प्रतिबन्ध अमान्य करने का यह अपने को अधिकारी समझता है।

हिन्दी की
प्रतिनिधि कहानियाँ

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

[सन् १८८३-१९२२]

सन् १९०४ में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० में प्रथम उत्तीर्ण हो कर गुलेरी जी मेयो कालेज अजमेर में संस्कृत के प्रधानाध्यापक हुए, सन् १९२० में बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के कालेज आफ़ ओरिएंटल लर्निंग के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। पुरातत्व, भाषा-तत्व, प्राचीन इतिहास संस्कृत, पाली और प्राकृति के विद्वान थे।

गुलेरी जी की तीन ही कहानियों का पता मिलता है, पहली 'सुखमय जीवन' सन् १९११ में छपी थी, अन्तिम 'उसने कहा था' सन् १९१५ में। इन तीनों कहानियों से ही उन्होंने हिन्दी-साहित्य में अपना स्थान बना लिया। उसने 'कहा था, तीनों में श्रेष्ठ हैं। और रचना-कौशल की दृष्टि से आश्चर्यजनक प्रौढ़ता और परिपक्वता का परिचय देती है। व्यंग्य का पुट सूक्ष्म चरित्र-चित्रण, देशज शब्दों के प्रयोग द्वारा वातावरण की सृष्टि, सरल, कोमल और भावानुगामिनी भाषा—ये गुलेरी जी के विशेष गुण हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

उस ने कहा था

: १ :

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिन की पीठ छिल रही है, और कान पक गये हैं, उन से हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह-चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उन की पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उन की बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर-एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर, सब का समुद्र उमड़ा कर बचो 'खालसा जी!', 'हटो भाई जी!' 'ठहरना भाई!' 'आने दो लालाजी!' 'हटो बाछा!' कहते हुए सफेद फेंटों खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है, कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उन की जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह

महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया वार-वार चेतावनी देने पर भी लीक से नही हटती. तो उनकी वचनावली के ये नमने हैं—'हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमाँ वालिए; हट जा पुताँ प्यारिए; बच जा लम्बी उमराँ वालिए'। समष्टि में इन के अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने हैं क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है?—बच जा।

ऐसे वम्बूकार्ट वालों के बीच में हो कर एक लड़का और लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुंथ रहा था, जो सेर भर गोले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ हैं?"

"मगरे में—और तेरे?"

"माँझे में—यहाँ कहाँ रहती है?"

"अतर सिंह की बैठक में, वह मेरे माम। होते हैं।"

"मैं भी मामा के महाँ आया हूं, उनका घर गुरु बाज़ार में है।"

इतने में दूकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकरा कर पूछा "तेरी कुड़मायी हो गयी?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे तीसरे दिन सबज़ी वाले के यहाँ; दूध वाले के यहाँ, अकस्मात दोनों दिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा: तेरी कुड़माई हो गयी?' और

उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली, "हाँ, हो गयी।"

"कब ?"

"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ 'सालू ?"

लड़की भाग गयी। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया; एक छावड़ी वाली के दिन-भर की कमाई खोयी, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले पर दूध उड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पायी तब कहीं घर पहुँचा।

: २ :

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है ? दिन–रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गयीं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेंह, और बरफ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए हैं। गनीम कहीं दीखता नहीं, घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने-वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल जाती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस ज़लज़ले होते हैं जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गयी तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहना सिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आजायगी, और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खा कर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग़ में—मखमल का सा हरा घास है, फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती।

कहती है तुम राजा हो मेरे मुल्क को बचाने आये हो"।

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मोर्चे का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो..."

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्करा कर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?"

"सूबेदार जी, सच है," लहनासिंह बोला, "पर करें क्या? हड्डियों हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।"

"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।"—यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बालटी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।" इस पर सब खिल-खिला पड़े, और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बालटी भर कर उस के हाथ में दे कर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाँ जमीन यहाँ लूँगा, और फलों के बूटे लाऊँगा।"

"लाडी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने-वाली फिरंगी मेम—"

'चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, होठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे को हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा अब बोधासिंह कैसा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उस के पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत; है और निमोनिया से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वज़ीरासिंह ने त्यौरी चढ़ा कर कहा—"क्या मरने मारने की बात लगायी है? मरें जर्मनी और तुरक।"

: ३ :

दो पहर रात गयी है। अंधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है।

बोधासिंह बिस्कुटों के तीन खाली टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछा कर और लहनासिंह के दो कम्बल और बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उस के मुँह से लगा कर पूछा, "कहो, कैसे हो?" पानी पी कर बोधा बोला, "कँपनी छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगडी है ओर मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए..."

"हाँ, याद आयी। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आयी है। विलायत से मेमें बुन-बुन कर भेज रही हैं। गुरू उनका भला करे।" यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूट?" यों कह कर 'नहीं' करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आयी, "सूबेदार हज़ारासिंह।"

"कौन लपटन साहब ? हुकुम हुजूर"—कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम कर के सामने हुआ।

"देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादह जर्मन नहीं है। इन पेड़ों के नीचे नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब साथ ले उन से जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा बुझा कर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये। और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा—"तुम भी पियो।"

आँख मारते मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन

साहब पाँच वर्ष से उस की रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं ?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ ? याद है, पार साल नकल. लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गये थे—"

"हाँ, हाँ—"

"वही जब आप खोते पर सवार थे और आप का खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ?"

"बेशक, पाजी कहीं का—"

"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आप की एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रजमेंट की मैस में लगायेंगे।"

"हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया—"

"ऐसे बड़े बड़े सींग। दो दो फुट के तो होंगे ?"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुम नें सिगरेट नहीं पिया ?"

"पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूं"—कह कर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

"कौन वजीरासिंह ?

'हाँ, क्यों लहना क्या कयामत आ गयी। ज़रा तो आँख लगने दी होती ?"

"होश में आओ। कयामत आयी और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आयी है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उन की वर्दी पहन कर वह कोई जर्मन आया है। सूबेदार नें इस का मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीनें को सिगरेट दिया है ?"

"तो अब ?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होराँ कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगें और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गयें होंगें। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं..."

ऐसी तैसी हुक्म की। मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लप-टन की खबर लेता हूं।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक एक अकालिया सिख सव लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उस नें देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेंल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों

में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जा कर एक दियसलाई जला कर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहानी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दासाहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आख। मीन गॉट्ट' कहते हुए चित्त हो ग । लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली, तीन चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हंस कर बोला'––'क्यो लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये। हमारे लपटन साहब तो बिना "डेम के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिएँ तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था, औरतों को बच्चे होने के तावीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी

के बड के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था—जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं । वेद पढ़-पढ़ कर उस में से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं । गौ को नहीं मारते । हिन्दुस्तान में आ जायें तो गोहत्या बन्द कर देंगे । मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो, सरकार का राज जाने वाला है । डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था । मैं ने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—"

साहब की जेब से पस्तौस चला और लहना की जाँघ में गोली लगी । इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी । धड़ाका सुन कर सब दौड़ आये ।

बोधा चिल्लाया, "क्या है ?"

लहना सिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया', और औरों से सब हाल कह दिया । सब बन्दूकें ले कर तैयार हो गये । लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कस कर बाँधीं । घाव माँस में ही था । पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया ।

इतने ही में सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई में घुस पड़े । सिखों की बन्दकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका । दूसरे को रोका । पर यहाँ थे आठ (—लहनासिंह तक तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और और लेटे हुए थे —) और वे सत्तर । अपने मुर्दे भाईयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुस आते थे । थोड़े से मिनटों में वे—

अचानक आवाज आयी, "वाह गुरु जी की फतह । वाह गुरु जी का खालसा ।" और धड़ धड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर होने लगे । ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पटों के

बीच में आ गये । पीछे से सूबेदार हज़ारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे । पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिखाँ दी फौज आयी । वाह गुरु जी दी फतह। वाह गुरु जी दा खालसा । सत श्री अकालपुरुख ।" और लड़ाई खतम हो गयी । तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिखों में पन्दरह के प्राण गये । सूबेदार के दाहने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गयी । लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी । उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया आर बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया । किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिस के प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि वाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य कहलाती । वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्राँस की भूमि मेरे बूटों से चिपट रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया । सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागज़ात पाकर वह उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्हों ने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ घंटे के अन्दर अन्दर आ पहुंचीं । फ़ील्ड अस्पताल नज़दीक था । सुबह होते-होते वहाँ पहुंच जायेंगे, इसलिए

मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह को जाँघ में पट्टी बंधवानी चाही । पर उनने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते ही नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुंच कर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी । मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वज़ीरासिंह मेरे पास है ही ।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला आप भी चढ़ जाओ । सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना । और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैं ने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं । सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा—"तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना उसने क्या कहा था ?

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैं ने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया ।—वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे । तर हो रहा है ।"

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक एक करके सामने आती हैं सारे दृश्यों

के रंग साफ़ होते हैं, समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है...

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्ज़ी वाले के यहाँ—हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू?' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ, क्रोध हुआ। क्यों हुआ?...

"वजीरासिंह पानी पिला दे।"

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह ७७ राइफ़ल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी या नहीं। सात दिन कि छुट्टी ले कर ज़मीन के मुकद्मे की पैरवी करने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फ़ौज लाम पर जाती है, फ़ौरन चले जाओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुंचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बड़े में से निकल कर आया और बोला—"लहना, सूबेदारनी तुम को जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वाटरों में तो कभी सूबेदार के घर के आगे रहे नहीं। दरवाज़े पर जा कर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप। 'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटोंवाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट मे मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वज़ीरा, पानी पिला।"

'उसने कहा था।...'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौक़ा आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घँघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उस के पीछे चार और हुए, पर एक भी नही जिया।' सूबेदारनी रोने लगी।' अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे, और मुझे उठा कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती जमादारनी ओबरी में चली गयी। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह, पानी पिला।"

'उसने कहा था।...'

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वज़ीरासिंह बैठा है।

जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, "कौन। कीरतसिंह ?"

वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।"

वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ ठीक है। पानी पीला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चचा-भतीजा दोनों कहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उस का जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वज़ीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा: 'फ्रांस और वेल्जियम ८६वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिक्ख राइफ़ल्स जमादार लहनासिंह।'

जयशंकर 'प्रसाद'

[सन् १८८६-१९३७]

'प्रसाद' जी काशी के एक प्रतिष्ठत वैश्य-कुल में उत्पन्न हुए, स्कूल की साधारण पढ़ाई के बाद घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। वह स्वयं तो कवि थे ही, उनका घर बराबर कवियों का अड्डा बना रहता था और अपने कृतित्व के अलावा इस मैत्री-सम्पर्क के द्वारा भी उन्होंने हिन्दी साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। कविता नाटक, उपन्यास, कहानी—सभी क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा फूली-फली. वह एक नये साहित्य-युग के निर्माता और एक नयी शैली के उद्भावक भी थे। उनकी काव्य-भाषा गरिमामयी और कभी दुरूह भी होती थी, पर कहानियों में वह सरल काव्य-मयी भाषा में उदत्ता और शक्तिशाली भावनाएं प्रकट करते थे और जीवनमय चरित्रों का निर्माण करते थे। 'तितली' जैसे उपन्यास में उनका सामाजिक व्यंग्य भी लक्षित होता है, पर साधारणतया उन के चरित्र एक अलग ही लोक में विचरण करते थे, जिसे 'प्रसाद की विशाद कल्पना और गम्भीर अतीत में अनुप्राणित किये रहता था।

'प्रसाद' की प्रेरणा से संस्थापित 'इन्दु' ने हिन्दी की उल्लेखनीय सेवा की और मौलिक प्रतिभाओं को सामने लाया। हिन्दी कहानी के प्रारम्भ-काल में ही 'प्रसाद' की ग्राम, 'आकाश-दीप', 'बिसाती', स्वर्ग के खंडहर आदि कहानियों ने पाठकों को चमत्कृत कर दिया था।

जयशंकर 'प्रसाद'

बिसाती

उद्यान की शैल-माला के नीचे एक हरा-भरा छोटा-सा गाँव है। वसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन कर के फूलों के सौरभ से उसके झोपड़ों को भर देता है। तहलटी के हिम-शीतल झरने उस को अपने बाहुपाश में जकड़े हुए हैं। उस रमणीय प्रदेश में एक स्निग्ध संगीत निरन्तर चला करता है, जिसके भीतर बुलबुलों का कलनाद, कम्प और लहर उत्पन्न करता है।

दाड़िम के लाल फूलों की रँगीली छाया सन्ध्या की अरुण किरणों मे चमकीली हो रही थी। शीरीं उसी के नीचे शिला-खंड पर बैठी हुई सामने गुलाबों की झुरमुट देख रही थी, जिस में वहुत से बुलबुल चहचहा रहे थे। वह समीरण के साथ छूल-छुलैया खेलते हुए आकाश को अपने कलरव से गुंजरित कर रहे थे।

शीरीं ने सहसा अपना अवगुंठन उलट दिया। प्रकृति प्रसन्न हो हँस पड़ी। गुलाबों के दल में शीरीं का मुख राजा के समान सुशोभित था। मकरन्द मुँह में भर दो नील-भ्रमर उस गुलाब से उड़ने में असमर्थ थे, भौंरों के पर निःस्पन्द थे। कटीली झाड़ियों की कुछ परवाह न करते हुए बुलबुलों का उस में घुसना और उड़ भागना शीरीं तन्मय हो कर देख रही थी।

उसकी सखी जुलेखा के आने से उसकी एकान्त भावना भंग हो गयी। अपना अवगुंठन उलटते हुये जुलेखा ने कहा—"शीरीं। वह तुम्हारे हाथों पर आ कर बैठ जाने वाला बुलबुल आज-कल नहीं दिखलाई देता।"

आह खींच कर शीरीं ने कहा—"कड़े शीत में अपने दल के साथ मैदान की ओर निकल गया। वसन्त तो आ गया पर वह नहीं लौट आया।"

"सुना है कि ये सब हिन्दोस्तान में बहुत दूर तक चले जाते हैं। क्या यह सच है शीरीं ?"

"हाँ प्यारी। उन्हें स्वाधीन विचरना अच्छा लगता है। इन की जाति बड़ी स्वतन्त्रता-प्रिय है।"

"तूने अपनी घुंघराली अलकों के पाश में उसे क्यों न बाँध लिया।"

"मेरे पाश उस पक्षी के लिए ढीले पड़ जाते थे।"

"अच्छा लौट आवेगा, चिन्ता न कर। मैं घर जाती हूँ।"

शीरीं ने सिर हिला दिया।

जुलेखा चली गयी।

जब पहाड़ी आकाश में सन्ध्या अपने रँगीले पट फैला देती, जब विहंग केवल कलरव करते पंक्ति बाँध कर उड़ते हुए गुंजान झाड़ियों की ओर लौटते और अनिल में उन के कोमल परों से लहर उठती, जब समीर अपनी झोंकेदार तरंगों में बार-बार अन्धकार को खींच लाता, जब गुलाब अधिकाधिक सौरभ लुटा कर हरी चादर में मुँह छिपा लेना चाहते थे, तब शीरीं की आशा-भरी दृष्टि कालिमा से अभिभूत हो कर पलकों में छिपने लगी। वह जागते हुए भी एक स्वप्न की कल्पना करने लगी।

हिन्दोस्तान के समृद्धिशाली नगर की गली में एक युवक पीठ पर गट्ठर लादे घूम रहा है। परिश्रम और अनाहार से उस का मुख विवर्ण है। थक कर वह किसी के द्वार पर बैठ गया है। कुछ बेच कर उस दिन की जीविका प्राप्त करने की उत्कंठा उस की दयनीय बातों से टपक रही है। परन्तु वह गृहस्थ कहता है—"तुम्हें उधार देना हो तो दो, नहीं तो अपनी गठरी उठाओ। समझे आगा।"

युवक कहता है, "मुझे उधार देने की सामर्थ्य नहीं।"

"तो मुझे भी कुछ नहीं चाहिए।"

शीरीं अपनी इस कल्पना से चौंक उठी। काफिले के साथ अपनी सम्पत्ति लाद कर खैबर के गिरि संकट को वह अपनी भावना से पदाक्रान्त करने लगी।

उस की इच्छा हुई कि हिन्दोस्तान के प्रत्येक गृहस्थ के पास हम इतना धन रख दें कि वे अनावश्यक होने पर भी उस युवक की सब वस्तुओं का मूल्य दे कर उस का बोझ उतार दें। परन्तु सरला शीरीं निस्सहाय थी। उस के पिता एक क्रूर पहाड़ी सरदार थे। उस ने अपना सिर झुका लिया कुछ सोचने लगी।

सन्ध्या का अधिकार हो गया। कलरव बन्द हुआ। शीरीं की साँसों के समान समीर की गति अवरुद्ध हो उठी। उस की पीठ शिला से टिक गयी।

दासी ने आ कर उस को प्रकृतिस्थ किया। उसने कहा, "बेगम बुला रही है। चलिए, मेंहदी आ गयी है।"

महीनों हो गये। शीरीं का ब्याह एक धनी सरदार से हो गया। झरने के किनारे शीरीं के बाग में शवरी खींची है। पवन अपने एक एक थपेड़े में सैंकड़ों फूलों को रूला देता है। मधु-

धारा बसने लगती है। बुलबुल उस की निर्दयता पर क्रन्दन करने लगते हैं। शीरीं सब सहन करती रही। सरदार का मुख उत्साहपूर्ण था। सब होने पर भी वह एक सुन्दर प्रभात था।

एक दुर्बल और लम्बा युवक पीठ पर गट्ठर लादे सामने आ कर बैठ गया। शीरीं ने उसे देखा, पर वह किसी ओर देखता नहीं। अपना सामान खोल कर सजाने लगा।

सरदार अपनी प्रेयसी को उपहार देने के लिए काँच की प्याली और कश्मीरी सामान छाँटने लगा।
शीरीं चुपचाप थी, उस के हृदय कानन में कलरवों का क्रन्दन हो रहा था। सरदार ने दाम पूछा। युवक ने कहा—"मैं उपहार देता हूँ, बेचता नहीं। ये विलायती और कश्मीरी सामान मैंने चुन कर लिये हैं। इन में मूल्य ही नहीं हृदय भी लगा है। ये दाम पर नहीं बिकते।"

सरदार ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"तब मुझे न चाहिए। ले जाओ, उठाओ।"

"अच्छा, उठा ले जाऊँगा। मैं थका हुआ आ रहा हूँ। थोड़ा अवसर दीजिए मैं मुँह हाथ धो लूं।" कह कर युवक भरभरायी ई आँखों को छिपाते, उठ गया।

सरदार ने समझा झरने की ओर गया होगा। विलम्ब हुआ पर वह न आया। गहरी चोट और निर्मम व्यथा को सहन करते कलेजा हाथ से पकड़े हुए शीरीं गुलाब की झाड़ियों की ओर देखने लगी। परन्तु उस की आँसू-भरी आँखों को कुछ न सूझता था। सरदार ने प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ रख कर पूछा—"क्या देख रही हो?"

"एक मेरा पालतू बुलबुल शीत में हिन्दोस्तान की ओर चला गया था। यह लौट कर आज सबेरे दिखलाई पड़ा पर जब वह

पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोह-काफ की ओर भाग गया।" शीरीं के स्वर में कम्पन था फिर भी वे शब्द बहुत सँभल कर निकले थे। सरदार ने हँस कर कहा, "फूल को बुलबुल की खोज ? आश्चर्य है ?"

बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नहीं आया। शीरीं ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

[सन् १८९१—१९४६]

चार वर्ष की आयु में अपने बाबा द्वारा गोद लिये जा कर 'कौशिक' जी अम्बाला से कानपुर पहुँचे, वहीं मैट्रिक किया। हिन्दी संस्कृत घर पर पढ़ते रहे। सन् १९११ से लिखने लगे ; पहली कहानी 'रक्षाबन्धन' सन् १९१२ में छपी। 'विजयानन्द दुबे' के नाम से हास्य भी लिखते रहे, 'दुबेजी की चिट्ठी' नाम की पत्र-माला बहुत प्रसिद्ध हुई।

'कौशिक' हिन्दी कहानी-कला के आचार्यों में से एक थे। उनकी कहानियाँ दैनिक घरेलू जीवन की समस्यायों को ले कर उठती थीं, और उन के व्यापक सामाजिक अभिप्रायों को प्रकट करती थीं। मनोवैज्ञानिक चित्रण, व्यंग्यात्मक सम्भाषण और कौतूहल के निर्वाह के कारण उन की कहानियाँ बहुत लोकप्रिय हैं।

'कौशिक' जी के कई कहानी-संग्रह और दो उपन्यास प्रकाशित हुए।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

ताई

: १ :

"ताऊ जी, हमें लेलगाड़ी ला दोगे ?"—कहता हुआ एक पंचवर्षी बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैला कर कहा, "हाँ बेटा, ला देंगे।"

उन के इतना कहते कहते बालक उन के निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूँम कर बोले, "क्या करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला, "उसमें कल बली दूल जायगे। हम भी जायेंगे, चुन्नी को भी ले जायेंगे। बाबूजी को नहीं ले जायेंगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते। ताउजी, तुम ला दोगे तो तुम्हें ले जायेंगे।"

"और किस को ले जायगा ?"

बालक दम भर सोच कर बोला, "बछ, औल किसी को नहीं ले जायेंगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उन की ओर इशारा करके कहा, "और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?"

बालक कुछ देर अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई सी बैठी थीं। बालक को उन के मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला, "ताई को नहीं ले जायँगे।"

ताई सुपारी काटती हुई बोली, अपने ताऊजी को ही ले जा। मेरे ऊपर दया रख।"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कसी। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा, "ताई को क्यों नहीं ले जायगा ?"

बालक : "ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं।"

बाबू : "जो प्यार करें तो ले जायगा ?"

बालक को इस में कुछ सन्देह था। ताई का भाव देख कर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इस से बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा, "क्यों रे, बोलता नहीं ?" ताई प्यार करें तो रेल पर बिठा कर ले जायगा ?

बालक ताऊ को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिला कर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनी जी के पास ले जा कर उन से बोले, "लो, इसे प्यार कर लो, तो यह तुम्हें भी ले जायगा", परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनक कर बोली, "तुम्हीं रेल पर बैठ कर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं किया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले— "प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठायेगा। क्यों रे मनोहर।"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में चोट नहीं लगी, पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार-पुचकार कर चुप किया, और तत्पश्चात् उके कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का बचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भय-पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले, "तुम्हारा यह व्यवहार कैसा है ? बच्चे को ढकेल दिया। जो उसके चोट लग जाती तो ?"

रामेश्वरी मुँह मटका कर बोलीं, "लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लाद देते थे ? आपही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और आप ही अब ऐसी बात करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़ कर बोले, "इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?"

रामेश्वरी : "और नहीं किसे कहते हैं। तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किस का जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कोई परवाह ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबू : बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुन कर तो चाहे जैसा जी; हो, प्रसन्न हो जाता है, मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है।"

रामेश्वरी : तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो। पराये धन से कहीं घर भरता है।"

बाव साहब कुछ देर चुप रह कर बोले : यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना किसे कहूँ।"

रामेशवरी कुछ उत्तेजित हो कर बोली : "बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे यह बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं, नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई भतीजों में मग्न रहते हो।"

बाबू साहब मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा, "पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग में नहीं वह पूजा पाठ से प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।

श्रीमीत जी कुछ-कुछ रूँआसे स्वर में बोलीं, इस विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ, तो काम कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें आदमी काहे को किसी बात की चेष्टा करे।"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं; अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न द कर वहाँ से टल गये।

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का का काम करते हैं। लेन देन भी है। इनका एक छोटा भाई भी है। उसका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु पच्चीस वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास की इक्कीस साल के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं कृष्णदास की दो सन्तानें हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक

परिचित हो चुके है—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उन की सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उस के प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वह अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिल हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उन की आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त हो कर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास की दूसरी शय्या पर रामेश्वरी हथेली पर सिर रख, किसी चिन्ता में में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठ कर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट ले कर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह ढकेला था कि मुझे अब तक उस का दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल ही अमानुषिक हो उठता है।

रामेश्वरी बोली—तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पंडित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है, और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उस ने उपाय भी बताये थे ; पर तुम ने उन में से एक भी उपाय कर के न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है।

आदमी उपाय तो करके देखता है । फिर होना न होना तो भगवान् के अधीन है ।"

बाबू साहब हँस कर बोले, "तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी... क्या कहूँ, तुम इन ज्योंतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया भर के झूठे ओर धूर्त हैं । ये झूठ बोलने ही की रोंटियाँ खाते हें ।"

रामेश्वरी तुनक कर बोली, "तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोंथी पुराण भी सब झूटे हैं ? पंडित कुछ अपनी तरफ से तो बना कर कहते ही नहीं । शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हें । अंग्रेज़ी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं । जो बातें बाप दादे के जमाने से चली आयी है, उन्हें भी झूठा बताते हैं ।"

बाबू साहब--"तुम बात तो समझती नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो । मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो; परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं । उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो एक छोटी मोंटी पुस्तकें पढ़ कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को ठगते-फिरते हें । ऐसी दशा में उन की बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?"

रामेश्वरी--"हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो । अच्छा, एक बात पूछती हूँ । भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती ?"

इस वार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा । वह देर तक चुप रहे । तत्पश्चात् एक लम्बी साँस ले कर बोले--"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिस के हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या

जाय ? जब नहीं है और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? इस के सिवा जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी तो हो रही है । जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उन की बाल-क्रीड़ा से आता, वही इन की क्रीड़ा से भी आ रहा है । फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय ।"

रामेश्वरी कुढ़ कर बोलीं—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ । इसी से रात-दिन जला करती हूँ । भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा ?"

बाबू साहब हँस कर बोले, "अरे तुम भी कहाँ की पोच बातें लायीं । नाम सन्तान से नहीं चलता, अपनी सुकृति से चलता है । तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके ? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं उन सब का नाम क्या सन्तान ही की बदौलत चल रहा है ? सच पूछो तो सन्तान से जितना नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की सम्भावना रहती है ; परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं । हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे ? उन के सन्तान कहाँ है ? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उन का नाम अब तक चला आ रहा है, और न जाने कितने दिनों तक चला जायगा ।"

रामेश्वरी : "शास्त्र में लिखा है कि जिस के पुत्र नहीं होता उस की मुक्ति नहीं होती ।"

बाबू : "मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं । मुक्ति है किस चिड़िया का नाम ? यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय, तो

यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों को मुक्ति हो ही जाती है ? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है ? ये जितने पुत्र वाले हैं सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?"

रामेश्वरी निरुतर हो कर बोलीं, "अब तुम से कौन बक-वाद करे। तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

: ३ :

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यो न हो, जब तक मनुष्य उस को परायी समझता है, तब तक उस से प्रेम नहीं करता; किन्तु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम में न आने वाली वस्तु को भी मनुष्य अपनी समझता है, तो उस से प्रेम करता है। परायी वस्तु कितनी ही सुन्दर क्यों न हो उस के नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता; इस लिए कि वह वस्तु उस की नहीं, परायी है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आने वाली हो, उस के नष्ट होन पर मनुष्य को दुःख होता है; इस लिए कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य परायी चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बना कर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि वह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। मानव से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का सा होता है, यह कभी पृथक नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उन का हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उन के हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं; परन्तु उन का विकास नहीं हुआ था। उन का हृदय उस भूमि की तरह था,

जिस में बीज तो पड़ा हुआ था, पर उसको सींच कर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित कर के भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं; इसी लिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिचता तो था; परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उन के हृदय में उन के प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी; विशेष कर उस समय उन के द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उन के पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उन के (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठीं हवा खा रही थीं। पास ही उन की देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दाड़-दौड़ कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उन के खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उन के बाल, कमल की तरह खिले हुए उन के नन्हे-नन्हे मुख, उन की प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उन का चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उन के हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा : वह खिलखिलाती हुई दौड़ कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उस के पीछे-पाछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गई। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता हैं।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उन की गोद में खेलते रहे। सहसा

उसी समय किसी के आने की आहट पा कर बच्चों की माता वहाँ से उठ कर चली गयीं।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।"––कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उन का स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़प कर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठ कर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद सी टूटी। पति को बच्चों में मग्न होते देख कर उनकी भौंहें तन गयीं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग गठा।

बच्चों को रेलगाड़ी दे कर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये और मुस्करा कर बोले––"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं! इस से मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इन के प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दु:ख हुआ। केवल दु:ख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दु:ख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उन की कमज़ोरी पति पर प्रकट हो गयीं; यह बात उन के लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले, "इसी लिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इन से प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगें। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इस में व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़ कर मन में कहा––'इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जाँय, पाप कटे। आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्य

करने को जी ललचा ही उठता है । इन के मारे कलेजा और भी जला करता था ।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देख कर कहा, "अब झेंपने से क्या लाभ ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं ।"

रामेश्वरी जल-भुन कर बोली, "मुझे क्या पड़ी है, जो मैं प्रेम करूँगी ? तुम्हीं को मुबारक रहें। निगोड़े आप ही आ आ के घुसते हैं । एक घर में रहने से कभी कभी हँसना बोलना पड़ता है । अभी परसों जरा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुम ने सैंकड़ों बातें सुनायीं । संकट में प्राण है, न यों चैन न वों चैन ।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुन कर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा, "न जाने कैसे हृदय की स्त्री है । अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी । अपनी इच्छा से चाहे जो करे ; पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है । न जाने मेरी बातों में कौन–सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूंगा, पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े अपशब्द निकाले तो अच्छा न होगा । तुम से मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं ।"

रामेश्दरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आंखों द्वारा निकालने लगीं ।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्राय: बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे । जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के

वह पति नज़र से गिरती जा रही हैं, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा—पराये बच्चों के पीछे यह मुझ से प्रेम कम करते जाते हैं मुझे हर समय बुरा - भला कहा करते हैं, इनके लिये ये बच्चे ही सब-कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे, उस दिन घी के दिये जलाऊँगी, इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रखा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेकी बैठी हुई थीं, उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक मालूम होने लगे, तब वही अपना ध्यान दूसरो ओर लगाने के लिए उठ कर टहलने लगीं।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गयीं और वह छत की चहार दीवारी हर हाथ रख कर खड़ी हो गयीं।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कट कर उसकी छत पर गिरे तो क्या ही आनन्द आये। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़ कर रामेश्वरी के पास आया और उन की टांगों में लिपट कर बोला, "ताई, हमें पतंग मँगा दो!" रामेश्वरी ने झिड़क कर कहा, "चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ हों कर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने

बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा, "ताई, पतंग मँगा दो—हम भी उड़ावेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं, फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा, 'यदि यह मेरा पुत्र होता तो आज मुझ से बढ़ कर भागवान स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़ा-मरा कितना सुन्दर है, और प्यारी-प्यारी बातें करता है, यही जी चाहता है कि उठा कर छाती से लगा लें।"

यह सोच कर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं, इतने में मनोहर उन्हें मौन देख कर बोला, "तुम हमें पतंग नहीं मंगवा दोगी तो ताऊ जी से कहकर पिटवावेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल होगया। वह उसे झिड़क कर बोली, जा, कह दे अपने ताऊजी से। देखूँ। वह मेरा क्या कर लेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उन के पास से हट आया और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश से उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा, 'यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिस्त भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे, इस दुलार पर बिजली टूटे।'

उसी समय आकाश से एक पतंग कट कर उसी छत की ओर आयी और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहीं पर एक द्वार था जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने

पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़ कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया और उन से दो फुट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे घर के आँगन में गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेरी पर रख कर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा, परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गयी। वह उसे पकड़ कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर चिल्लाया, "ताई।" रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उस के मन में आया कि अच्छा है मरने दो—सदा का पाप कट जायगा। यह सोच कर वह एक क्षण के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देख कर चिल्लाया— "अरी ताई।" रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देख कर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आगया। उन्होंने व्याकुल हो मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गयी। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मार कर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोर से चिल्ला उठतीं, और कहतीं "देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं, "बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती तो बचा सकती थी—मैंने

देर कर दी—" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गयी थी। टाँग बिठा दी गयी, वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा, "मनोहर कैसा है?"

रामजीदास ने उत्तर दिया, "अच्छा है।"

रामेश्वरी, "उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों के बाद पूर्ण स्वस्थ हो गयीं, अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं। और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उस के बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

प्रेमचन्द

[सन् १८८०-१९३६]

प्रेमचन्द का जन्म बनारस जिले में पाँडेपुर गाँव में हुआ। बचपन में ही माता-पिता को खो कर दसवाँ दर्जा पास कर के उन्होंने स्कूल में अध्यापन की नौकरी कर ली। फिर प्राइवेट परीक्षा दे कर बी० ए० किया। पहली कहानी उर्दू में सन् १९०७में छपी, हिन्दी में 'पंच परमेश्वर' सन् १९१६ में। असहयोग आन्दोलन में नौकरी छोड़ कर फिर सम्पूर्णतया साहित्य-सेवा में लगे रहे, सम्पादन के अतिरिक्त् प्रकाशन भी करते रहे।

प्रेमचन्द ने लगभग तीन सौ कहानियाँ और एक दर्जन उपन्यास लिखे। यद्यपि कहानी-क्षेत्र में 'प्रसाद', 'गुलेरी', 'कौशिक' और प्रेमचन्द लगभग साथ-साथ ही आये, तथापि प्रेमचन्द को ही आधुनिक हिन्दी-कहानी का, बल्कि सारे आख्यान- साहित्य का आदिपुरुष कहा जा सकता है। उनकी भाषा साधारण बोलचाल के सबसे निकट थी, दृष्टिकोण सबसे अधिक लोक-परक, और सामाजिक चेतना उन में सब से अधिक जागरूक थी। अपनी यथार्थनिष्ठा के कारण वह सब से अधिक आधुनिक भी थे। उन की रचनाओं में समकालीन राजनैतिक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, सामाजिक सुधार के आग्रह से आरम्भ कर के वह अनन्तर गान्धी-दर्शन के प्रतिनिधि बने और नैतिक आदर्शों पर उनका आग्रह मानव-प्रेम मे पुष्ट हुआ। अपनी यथातथ्यता, शूक्षम पर्यवलोकन और गहरी सहानुभति के कारण उन के देहाती जीवन के चित्र बड़े सजीव बने हैं। मध्य और उच्चवर्ग के जीवन के चित्र उतने सफल नहीं रहे, पर नौकरशाही और पूँजीशाही पर या नागरिक जीवन की कृत्रिमता पर उन की चोटें मार्मिक होती थीं।

प्रेमचन्द

पंच परमेश्वर

: १ :

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक-दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, तब जुम्मन पर अपना घर छोड़ जाते थे। उन में न खान-पान व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मन्त्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरु जी की बहुत सेवा की—खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से मुक्त कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। शिक्षा की अपेक्षा उन्हें गुरु की सेवा शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती, जो-कुछ होता है गुरु के आशीर्वाद से होता है। बस गुरु जी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू

पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ तो वह यह मान कर संतोष कर लेंगे कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य हीं में न थी तो कैसे आती ?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के लायक न थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था आर इसी सोटे के प्रताप से आज आस पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थीं। उन के लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी—सब उन की कृपा की आकांक्षा करते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था तो जुम्मन शेख अपने अमोल विधान से ही सब के आदर-पत्र बने थे।

: २ :

जुम्मन शेख की एक बूढ़ा खाला (मौसी) थी। उस के पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी। परन्तु उस के निकट सम्बन्धियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे चौड़े वादे कर के वह मिलकियत अपने नाम चढ़वा ली थी। जब तक दान पत्र की रजिस्टरीं न हुई थी तब तक खाला जान का खूब आदर सत्कार किया गया, उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलुवे पलाव ही की वर्षा-सी की गयी ; पर रजिस्टरी की मुहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निष्ठुर हो गये। अब बेचारी खाला जान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं : "बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया है. मानो मोल ले लिया है। बघारीदाल के बिना

खींचे ? इस तरह साहु जी खूब जले-भुने। कइ बोरे गुड़ और कइ पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो ढाई सौ रुपये कमर में बँधे थे। इसके सिवाय गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे। अतएव छोड़ कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेट गये। वहीं रतजगा करने की ठान ली, चिलम पी, गाया, फिर हुक्का पिया। इस तरह साहु जी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे। अपनी जान में तो वे जागते ही रहे पर पौ फटकते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ गया तो थैली गायब। घबरा कर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारद। अफ़सोस में बेचारा सिर पीटने लगा और पछाड़ खाने लगा, प्रातःकाल रोते बिलखते घर पहुंचा। सहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी तब पहले रोई, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी, निगोड़े ने ऐसा कुलच्छना बैल दिया कि जन्म-भर की कमाई लुट गयी।

इस घटना को हुए कई वर्ष बीत गये। अलगू जब अपने बैल के दाम माँगते तब साहु और साहुआइन दोनों ही झल्लाये हुए कुत्तों की तरह चढ़ बैठते और अण्ड-बण्ड बकने लगते: "वाह। यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गयी, सत्यानास हो गया। इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं। आँखों में धूल झोंक दी, सत्यानासी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया। हम भी बनिये के बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जा कर किसी गड़हे में मुँह धो आओ तब दाम लेना, जी न मानता हो तो हमारा बैल खोल ले जाओ, महीना-भर के बदले दो महीना जोत लो। रुपया क्या लोगे ?"

चौधरी के अशुभ-चिन्तकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहु जी के बर्राने की पुष्टि करते: इस तरह फटकारें सुना कर बेचारे चौधरी अपना-सा मुँह ले

लिये आसपास के गाँवों में दौड़ती रहीं। कमर झुक कर कमान हो गया थी। एक एक पग चलना दूभर था। मगर बात आ पड़ी थी, उसका निर्णय करना जरूरी था।

विरला ही कोई भला आदमी होगा जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न वहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ कर के टाल दिया, किसी ने इस अन्याय पर ज़माने को गालियाँ दीं और कहा, कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा दिन हो, पर हवस नहीं मानती। अहा तुम्हें क्या चाहिए ? रोटी खाओ और अल्ला का नाम लो। तुम्हें खेती-बारी से अब क्या काम ? कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिन्हें हास्य के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के-से बाल—जब इतनी समग्रियाँ एकत्र हों तब हँसी क्यों न आवे ? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीनवत्सल पुरुष बहुत कम थे जिन्होंने उस अबला के दुःखड़े को गौर से सुना हो और उसको सान्त्वना दी हो। चारों ओर से घूम घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आयी। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली, "बेटा, तुम भी क्षण-भर के लिए मेरी पंचायत में चले आना।"

अलगू : "मुझे बुला कर क्या करोगी ! कई गाँवों के आदमी तो अवेंगे ही।"

खाला: "अपनी विपद तो सब के आगे रो आयी हूँ, आने न आने का अख्तियार उन को है।"

अलगू: यों आने को मैं आ जाऊँगा, मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।"

खाला : "क्यों बेटा ?"

अलगू : "अब इसका क्या जवाब दूँ ? अपनी खुशी, जुम्मन मेरे पुराने मित्र हैं। उन से बिगाड़ नहीं कर सकता।"

खाला "बेटा, क्या बिगाड़ के भय से ईमान की बात न कहोगे ?"

हमारे सोये हुए धर्म ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई जवाब न दे सके। पर उनके हृदय में अब्द गूँज रहे थे—'क्या बिगाड़ के भय से ईमान की बात न कहोगे ?'

: ४ :

सन्धया समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले ही से फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वह स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ ज़रा दूर बैठे हुए थे। जब कोई पंचायत में आजात था तब दबे हुए सलाम से उस का शुभागमन करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ो पर बैठी, तब वहाँ भी पंचायत आरम्भ हुई। फर्श की एक एक अंगुल जमीन भर गयी, पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयों में से केवल वहीं लोग पधारे थे जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निणय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकला था या चिलम के दमों से। लड़के इधर उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझ कर झुंड-के-झुंड जमा हो गये थे।

पंच लोग बैठ गये तो बूढ़ी खाला ने उन से विनती की—

"पंचो ! आज तीन साल हुए मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही

होंगे। जुम्मन ने मुझे हीन हयात रोटी कपड़ा देना कबूल किया था। साल भर मैंने इसके साथ रो-धो कर काटे, पर अब रात दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट भर रोटी मिलती है और न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी-दरबार कर नहीं सकती। तुम्हारे सिवाय और किसे अपना दुःख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो उसी राह पर चलूँ अगर मुझ में कोई ऐब देखो, मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो तो उसे समझाओ। क्यों एक बेकस की आह लेता है? पंचों का हुक्म सर माथे पर चढ़ाऊँगी।"

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियों को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले—"जुम्मन मियाँ! किसे पंच बदते हो? अभी से इस का निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे वही मानना पड़ेगा।"

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेष कर वही लोग दीख पड़े जिन से किसी न किसी कारण उन का वैमनस्य था। जुम्मन बोले—"पंच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। ख़ाला जान जिसे चाहें बदें, मुझे कोई उज्र नहीं।"

खाला ने चिल्ला कर कहा, "अरे अल्लाह के बन्दे। पंचों के नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।"

जुम्मन ने क्रोध से कहा, "अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बदो।"

खाला जान जुम्मन के आक्षेप को समझ गयी। वह बोली, "बेटा। खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं न किसी के दुश्मन। कैसी बात कहते हो? और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो तो जाने दो, अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्हीं को सरपंच बदती हूँ।"

जुम्मन शेख आनन्द से फूल उठे, परन्तु भावों को छिप

कर बोले, "अलगू चौधरी ही सही। मेरे लिए जैसे रामधन मिश्र वैसे अलगू।"

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले, "खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।"

खाला ने गम्भीर स्वर से कहा, "बेटा! दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है वह खुदा की तरफ से निकलती है।"

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, "जुम्मन शेख! हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा है, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं। मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो-कुछ अर्ज करना हो, करो।"

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाज़ी मेरी है। अलगू यह सब दिखावे की बातें कर रहा है; अतएव शान्ति-चित्त हो कर बोले "पंचो। तीन साल हुए खाला जान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें हीन-हयात खाना-कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है कि आज तक मैंने खाला जान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ, उनकी खिदमत करना मेरा फ़र्ज है; मगर औरतों में ज़रा अनबन रहती है। इस में मेरा क्या वश है? खाला जान मुझ से माहवार अलग खर्च माँगती हैं। जायदाद जितनी है वह पंचों से छिपी नहीं है। उससे इतना मुनाफा नहीं होता कि मैं माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामे में माह

वार खर्च का कोई जिक्र नहीं, नहीं तो मैं भूल कर भी इस झमेले में न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइन्दा पंचों को अख्तियार है जो फैसला चाहें करें।"

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था, अतएव पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह करनी आरम्भ की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़ी की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित था कि अलगू को क्या हो गया है? अभी यह मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था। इतनी ही देर में ऐसी काया-पलट हो गयी कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख ? इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया :

"जुम्मन शेख। पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति-संगत मालूम होता है कि खाला जान को माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफ़ा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो तो हिब्बानामा रद समझा जाय।"

: ५ :

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो वह शत्रु का-सा व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे। इसे समय के हेर-फेर के सिवाय और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे सच्चे मित्रों की परीक्षा हो जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे कपटी, धोखेबाज़ न

होते तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता ? यह हैज़ा, प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मों के ही दण्ड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोल कर रहे थे। वे कहते थे, इसी का नाम पंचायत है। दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रता रूपी वृक्ष सत्य का एक हल्का झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू ही की जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक-दूसरे की आवभगत ज़्यादा करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यह चिन्ता रहती कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

: ६ :

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं। जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्दी मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी जोड़ी मोल लाये थे। बैल पछाहीं जाति के सुन्दर बड़े बड़े सींगों वाले थे। महीनों तक आस-पास के गाँवों के लोग उन के दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा, यह दग़ाबाज़ी की सज़ा

है । इन्सान सब्र भले ही कर जाय, पर खुदा नेक-बद सब देखता है। अलगू को सन्देह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है । चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा, जुम्मन ने कुछ करा दिया है। चौधराइन और करीमन में स विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ । दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुई । जुम्मन ने किसी तरह शान्ति स्थापित की । उसने अपनी पत्नी को डाँट-डपट कर समझा दिया। वे उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये । उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्कपूर्ण सोटे से लिया ।

अब अकेला बैल किस काम का ? उसका जोड़ा बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला । निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए । गाँव में एक समझू साहु थे, इक्का-गाड़ी हाँकते थे । गाँव से गुड़, घी लाद कर वे मण्डी ले जाते, मंडी से तेल, नमक भर लाते और गाँव में बचते । इस बैल पर उनका मन लहराया । उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भर में वे बटक तीन खेपें हों। आजकल तो एक ही खेप के लाले पड़े रहते हैं । बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौंरी की पहचान कराई, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवाह न की ।

समझू साहु ने नया बैल पाया तो लगे रगेदने । दिन में तीन तीन चार-चार खेपें करने लगे । न चारे की फिक्र थी न पानी की, बस खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा-भूसा सामने डाल दिया । बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया कि फिर जोत दिया । अलगू चौधरी के घर थें तो चैन की

वंशी बजती थी । छठे छमासे कभी बहली में जोते जाते, तब खूब बैल उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते जाते थे । वहाँ बैल राम को रातिब, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था । शाम-सवेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सुहलाता था । कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर का खपन । महीने-भर में ही वह पिस-सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लोहू सूख जाता था । एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आयी थीं, पर था वह पानी दार, मार की सहन न थी।

एक दिन चौथे खेप में साह जी मे दूना वोझा लादा। दिन भर का थका जानवर, पैर न उठते थे । उस पर साहु जी कोड़े फटकारने लगे । बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़ कर चला। वह कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि ज़रा दम ले लूँ पर साहु जी को जल्द घर पहुंचने की फिक्र थी। अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे । बैल ने एक बार फिर ज़ोर लगाया। पर अब की बार शक्ति ने जवाब दे दिया । वह धरती पर गिर पड़ा और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहु जी न बहुत पीटा, टाँग पकड़ कर खींचा, नथुनों में लकड़ी ठूँस दी । पर कहीं मृतक भी उठ सकता है ? तब साहु जी को कुछ शंका हुई । उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोल कर अलग किया और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुंचे । वे बहुत चीखे-चिल्लाये, पर देहात का रास्ता बच्चों की आँखों की तरह साँझ होते ही बन्द हो जाता है, कोई नज़र न आया । आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे। अभागे ! तुझे मरना हीं था तो घर पहुंच कर मरता । ससुरा बीच रास्ते में ही मर रहा। अब गाड़ीं कौन

रोटियाँ नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके उतने से तो अब तक एक गाँव मोल ले लेते।"

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा, पर न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृह-स्वामिनी—के प्रबन्ध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धो कर काम चलता रहा। अन्त में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—"बेटा, तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपया दे दिया करो, मैं अपना अलग पका-खा लूँगी।"

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया—"रुपये क्या यहाँ फलते हैं?" खाला ने नम्रता से कहा—"मुझे कुछ रूखा-सखा चाहिये भी कि नहीं?" जुम्मन ने गम्भीर स्वर से जवाव दिया, "तो कोई यह थोड़े समझता है कि मौत से लड़ कर आयी हो।"

खाला बिगड़ गयीं। उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देख कर मन-ही-मन हँसता है। बोले: "हाँ जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटपट पसन्द नहीं।"

पंचायत में किस की जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी सन्देह न था। आसपास के गाँवों में ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रह का ऋणी न हो? ऐसा कौन था जो उन को शत्रु वनाने का साहस कर सके? किस में इतना वल था जो उनका सामना कर सके? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवें ही नहीं।

: ३ :

इसके वाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी

कर लौट आते, परन्तु डेढ़ सौ रुपये से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वे भी गरम हो पड़े। साहु जी बिगड़ कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गये। अब सहुआइन जी ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथा पाई की नौबत आ पहुंची। सहुआइन ने घर में घुस कर किवाड़ बन्द कर लिये। शोरगुल सुन कर गाँव के भले मानुष जमा हो गये। उन्होंने दोनों को समझाया! साहु जी को दिलासा दे कर घर से निकाला। वे परामर्श देने लगे कि इस तरह सिर फुड़ौवल से काम न चलेगा पंचायत करा लो। जो-कुछ तै हो जाय उसे स्वीकार कर लो। साहु जी राजी हो गये। अलगू ने भी हामी भर ली।

: ७ :

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों नें अपने अपने दल वनानें शुरू किये। इस के बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे फिर पंचायत बैठी। वहीं सन्ध्या का समय था। खेतों में कौवे पंचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय यह था कि मटर की फलियों पर उनका स्वत्व है या नहीं। और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक मंडली में यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्य को उन्हें वेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उसे स्वयं अपने मित्रों को भी दगा देने में संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गयी तो रामधन मिश्र ने कहा, "अब देरी क्यों? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी, किस कस को पंच वदते हो?"

अलगू ने दीन भाव से कहा, "समझू साहु ही चुन लें।"

समझू खड़े हुए और कड़क कर बोले, "मेरी ओर से जुम्मन शेख।"

जुम्मन का नाम सुनते थी अलगू चौधरी का कलेजा धक-धक करने लगा। मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे। वे बात को ताड़ गये। पूछा—"क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज़्र तो नहीं ?"

चौधरी ने निराश हो कर कहा, "नहीं, मुझे क्या उज़्र होगा ?"

अपने उत्तर दायित्व का ज्ञान वहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधार होता है। चब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं तव यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथदर्शक बन जाता है।

पत्र सम्पादक अपनी शान्ति कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रता के साथ अपनी प्रवल लेखनी से मन्त्रि-मंडल पर आक्रमण करता है, परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उस की लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय परायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दंड रहता है। माता-पिता उस की ओर से कितने चिन्तित रहते हैं। वे उसे कुल कलंक समझते हैं, परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वही अव्यवस्थित चित्त, उन्मत युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्ति चित्त हो जाता है--यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का ही फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करके अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो-कुछ निकलेगा वह देववाणी के सदृश है—और देववाणी में मेरे मनो विकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर टलना उचित नहीं।

पंचो ने दोनों पक्षों के सवाल - जबाव करने शुरू किये। बहुत दर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए; परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। इस के प्रतिकूल दो सभ्य मूल्य के अतिरिक्त समझू को कुछ दंड भी देना चाहते थे, जिस से फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त में जुम्मन ने फैसला सुनाया, "अलगू चौधरी और समझू साहु। पंचो ने तुम्हारे मुआमले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बिमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिया जाता तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उस से बड़ा कठिन परिश्रम कराया गया और उस के दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं किया गया।"

रामधन मिश्र बोले, "समझू ने बैल को जान-बूझ कर मारा है। अतएव उन से दंड लेना चाहिये।"

जुम्मन बोले, "यह दूसरा सवाल है। हम को इस से कोई मतलब नहीं।"

झगडू साह ने कहा, "समझू के साथ कुछ रियायत होनी चाहिये।"

जुम्मन बोले, "यह अलगू चौधरी की इच्छा पर है। वे रियायत करें तो उन की भलमनसी है।"

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खड़े हुए और ज़ोर से बोले, "पंचपरमेश्वर की जय।"

चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई—"पंच परमेश्वर की जय।"

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था—"इसे

कहते हैं न्याय । यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं । यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है।"

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आये और उन के गले लिपट कर बोले, "भैया जब से तुम ने मेरी पंचायत की, तब से मैं तुम्हारा प्राणघातक शत्रु बन गया था पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठ कर न कोई किसी का दोस्त होता है न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता । आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की ज़बान से खुदा बोलता है।"

अलगू रोने लगे । इस पानी से दोनों के दिलों की मैल धुल गयी। मित्रता की मुरझाई लता फिर हरी हो गयी ।

जैनेन्द्र कुमार

[जन्म सन् १९०६]

कौड़ियागंज जिला अलीगढ़ के एक मध्यश्रेणी के परिवार में जन्म हुआ ; आरम्भिक शिक्षा जैन गुरुकुल हस्तिनापुर में पायी। विद्या-व्यसनी तथा स्वाध्यायी थे ; मैट्रिक कर लेने के पश्चात दो वर्ष तक हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में अध्ययन करते रहे। असहयोग आन्दोलन में पड़ कर पढ़ाई छोड़ दी।

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कहानी के द्वितीय उत्थान के लेखक हैं, तथा मनोवैज्ञानिक कहानी के जन्मदाता हैं। कहानियों के तर्क पूर्ण सैद्धान्तिक कथोपकथन उन की चिन्तनशीलता का संकेत देते हैं—किन्तु कहीं-कहीं उलझाव भी घना हो जाता है। भाषा सुव्यवस्थित, प्रसादमयी, वर्णन में लाक्षणिकता तथा गतिशीलता होती है, पात्रों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।

जैनेन्द्र कुमार

त्रिबेनी

त्रिबेनी आखिर चौके से बाहर आयी।—यह कुलच्छनी लड़का जाने कहाँ धूल में खेलता फिरता है। और आता है तो रोता हुआ। घड़ी भर चैन नहीं लेने देता,—हाँ तो।

चौके से बाहर आ कर कान पकड़ कर उसने कहा, "क्यों रे। तू कहाँ था ? बोल, कहाँ था ? बोलता नहीं ? तो जा, मर।"

बच्चा न बोला, न गया, न मरा। रोता आया था, सो रोना भी बन्द हो गया और मुँह फुला कर गुमसुम खड़ा हो गया।

त्रिबेनी नें कान और खींच कर कहा, "क्यों रे। जवाब क्यों नहीं देता ? कहाँ गया था ?"

लड़के का नाम रिपुदमन है। वह फूले काठ के लट्टू की नाईं अटल और अपराजित बना हुआ खड़ा रहा।

"अभी तो कपड़े पहनाये थे, अभी कैसे कीचड़ कर लाया ? क्यों रे। गया कहाँ था ?" कह कर त्रिबेनी घर में खाने को हो तो बच्चे के लिए लेने चली गयी।

रिपुदमन आँगन में अकेला रह गया। पहले तो वह खड़ा रहा, फिर उसके बाद चुप-चाप बाहर निकला और पास के एक कुएँ पर चढ़, उस में पैर लटका कर, बैठ गया।

कुछ गजक-रेवड़ी हाथ में लिये त्रिवेनी जो आयी तो देखती है, आँगन में चिड़िया का पूत भी नहीं है। बोली, "ओ, कहाँ गया रे? ले, यह ले"

इतने में देखती क्या है कि वह सामने कुएँ में पैर लटका कर जो बैठा है, वह है रिपुदमन। लपकी गयी और बाँह पकड़ कर झटके से उसे उठा कर घसीटती हुई ले चली। घिसटते हुए बालक बोला, "मैं नहीं खाऊँगा। कुछ नहीं खाऊँगा--कभी नहीं खाऊँगा।"

अब बालक ने अपना बोझ ही छोड़ दिया, और वह धरती पर गिर जाने लगा। उसको सीधा थामे रखने में त्रिबेनी की कलाई दुख चली। तब उसने बालक की बाँह छोड़ कर कहा, "नहीं खायेगा। तू नहीं खायेगा? और यह कह कर उसे थप्पड़ों, लातों से मारने लगी।

बालक रोया बिल्कुल नहीं। उल्टे उद्दंडता से चिल्लाता रहा, "मार ले आज। तू खूब मार ले। जी भर कर मार ले। मैं नहीं, नहीं खाऊँगा।"

"मत खा, मत खा, चंडाल।" कह कर हाथ की गजक और रेवड़ी को जोर से बच्चे के सिर पर पटक कर त्रिबेनी झींकती हुई घर में चली गयी।

अन्दर चूल्हे के पास गयी। आँच मन्दी हो गयी थी। उसने धुआँ दे कर जलती हुई लकड़ी को ज़ोर से चूल्हे के भीतर किया। पास उठा कर दूसरी लकड़ी को भी उस में ठूँसा। फिर ज़ोर–ज़ोर फूँक मारने लगी और बीच-बीच में झल्लाती जाती थी। आँच आखिर बल आयी। उसने चूल्हे की बटलोई को ठीक किया। फिर वहीं चूल्हे के बराबर माथे को हथेली में ले कर बैठ रही।

....अब तक नहीं आये। छुट्टी नहीं हुई? ऊँह होगा कुछ।....

सच, अब मुझ से नहीं होता काम । वह जानें, उन का काम जाने अब। फिर...यह साँसत आये साल सिर पर रखी है। भगवान तू ने औरन को क्यों जनमाया? आये दिन यही धन्धे, तिस पर क्लेश । मुझ से नहीं होता । सिर तो फटा जाता है कैसे करूँ?...

उठ कर कमरे में आ कर खाट पर बैठ गयी । उस का जी ठीक नहीं रहता । ब्याह बाद से ही कुछ गड़बड़ हाल है । तबी-यत अनमनायी मिचलायी रहती है । सिर में दर्द तो हर घड़ी बना रहता है । हरारत भी लग आया करती है। आराम चाहती है, पर आराम कहाँ मिलता है? और मिलता है, तो उस से भी उकताहट जल्दी आ जाती है । एक दिन कटता है, दूसरा दिन आ जाता है। उस की समझ में नहीं आता––ये दिन पर दिन क्यों आते हैं? कहाँ से आते हैं? सब–कुछ एक–साथ खतम क्यों नहीं हो जाता? जीना एक दिन के लिए हो और खूब खुशी से फुलझड़ी की तरह उस दिन जी लिया जाय, फिर अगले दिन के लिए कुछ रहे ही नहीं...ऐसा हो तो क्या हर्ज है? देखो, पड़ोस में उन के घर कैसी हँसी रहती है। बच्चे कैसे फूल से खिले रहते हैं। एक हम हैं कि...ऊँह...है तो हैं।... ऐं, वक्त हो गया? वह आते न हों?

सोचने लगी कि उठे, जा कर गरम पानी ठीक कर दे, कुछ नाशते का बन्दोबस्त कर दे, क्योंकि वह आते ही होंगे।

त्रिवेनी के पति मनसाराम स्कूल में मुदर्रिस हैं। चौबीस रुपये माहवार पाते हैं। ब्याह को पाँच से कुछ ही ऊपर साल हुए हैं। बड़ा बच्चा रिपुदमन है ही। एक लड़की हुई थी जो एक बरस की हो कर चेचक में जाती रही। दूसरा बच्चा मरा पैदा हुआ, आखिरी गर्भ गिर गया । इस तरह तीन प्राणी हैं। सो, चौबीस में एक तरह से गृहस्थी मज़े में निभ जाती है, दो-

चार रुपये बचा कर वे दोनों जने आयन्दा के लिए संत कर जोड़ते भी जाते हैं। इस भाँति गृहस्थी की गाड़ी चल ही रही है।

चल ती रही है, पर चूँ-चूँ भी करती जाती है। जिया जा रहा है, पर जीने का कुछ रस नहीं मिल रहा है। दोनों अपने बीच नयी सृष्टि भी करते हैं। पर ढर्रा है, चल रहा है। जो हो रहा है, हुए जा रहा है। कुछ लुत्फ़ नहीं, सार नहीं। मानो सब कुछ बीतने के लिए बीत रहा है। मौत आवेगी तब कहीं छुट्टी होगी।

त्रिबेनी सोच रही थी कि अब उठूँ, जाऊँ, उनके लिए पानी ठीक कर दूँ। इतने में पति आ गये।

आते वक्त रास्ते में उन्होंने देखा था कि रिपुदमन धरती से चिपट कर पड़ा है। रूठा मालूम होता है। शायद पिटा हो। उन्होंने पूछा था, "क्यों रे। क्यों रो रहा है?" जब पूछने और बाँह पकड़ कर झिटकने से भी लड़का नहीं बोला, तब मास्टर ने कहा, "माँ ने मारा होगा। क्यों?" बालक फिर भी कुछ न बोला। इसपर भारी मन से मास्टर बच्चे को वहीं छोड़ चुप-चाप चले आये।

त्रिबेनी उठ रही थी कि पति को आता देख कर खाट पर ही बैठ रही। पति कमरे में आये, साफ़ा उतार कर खूँटी पर लटका दिया, कोट भी उतार कर टाँग दिया और बिना बोले चुप चाप बाहर आँगन में आ गये। वहाँ घड़े से पानी ले कर हाथ मुँह धोने लगे।

त्रिबेनी बैठी देखती रही, दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला। पति ने आराम से वक्त लगा कर हाथ मुँह धोया, अँगोछे से पोंछा, फिर कमरे में आये। वहाँ आ कर कोट पहना और साफा सिर पर रखते हुए बोले, "मैं खाना नहीं खाऊँगा।"

पल-भर मौन रह कर त्रिबेनी ने कहा, "खाना नहीं खाओगे। कल भी नहीं खाओगे ?"

"नहीं दोगी तो नहीं खाऊँगा। देखो, मेरा इन्तज़ार मत करना। लौटने में मुझे देर हो सकती है।"

"कुछ काम है ?"

"काम भी है।"

इसके बाद त्रिबेनी ने छ नहीं पूछा। मास्टर जी ने भी कुछ उपेक्षा नहीं की और कदम बढ़ा कर चले गये।

त्रिबेनी कुछ देर तो वहीं की वहीं बैठी रही। थोड़ी देर बाद जा कर चूल्हे में पानी झोंक दिया, बटलोई को उतार कर धरती में पटक दिया। फिर आ कर खाट पर मुँह ढाँप कर पड़ गयी

आधा घंटा हुआ होगा कि त्रिबेनी उठी, एक साथ उठ कर झाड़ू से घर का आँगन बुहारने लगी। वहाँ कूड़ा ज्यादा नहीं था, पर त्रिबेनी आँगन साफ करना चाहती थी। बुहारी हाथ में थी, तभी उसने सुना कि कोई दरवाजे के बाहर से 'उन्हें' पूछ रहा है, "मास्टर मनसाराम जी का घर क्या यही है ?... मास्टर जी। मास्टर जी।"

पहले तो वह उस स्वर पर चौंकने को हुई। फिर 'होगा कोई' मन में कहती हुई अपने काम में लगी रही। इतने में ही आगत व्यक्ति अन्दर आ गया ओर आँगन के किनारे खड़े हो कर पुकारने लगा, मास्टर मनसारामजी "मास्टर जी हैं ? मैं मिलने आया था।"

त्रिबेनी ने आँख ऊपर उठा कर देखा। देख कर वह सन्न रह गयी। बुहारी हाथ से खिसक गयी। वह व्यक्ति भी अकचका गया। हठात् बोला, "मास्टर जी हैं ? मैं मिलने आया था ?"

क्षण एक तो त्रिबेनी विमूढ़ हो गयी, फिर उस के मुँह से

निकला, "आओ।" निकालो तो, पर वह खड़ी वहीं-की-वहीं रह गयी।

व्यक्ति ने बिल्कुल ही पास आ कर मानो उसकी आँखों में कहा, "मैं मिलने आया हूँ। वह हैं ?"

अब त्रिबेनी स्वस्थ हो आयी। मुस्करा कर बोली, "वह तो नहीं हैं—"

कह कर अन्दर गयी और उसनें कोने से मोढ़ा खींच कर अपनी धोती से उसे झाड़ कर खाट के पास बिछा दिया। किनारे एक काठ की कुर्सी पड़ी थी, उसे भी बिछा दिया। नीचे पड़ी दरी खींच कर, तह करके कुर्सी पर डाल दी। व्यक्ति आँगन में खड़ा था। त्रिबेनी ने कहा, "आइये।"

व्यक्ति ने हँस कर कहा, "लेकिन मैं तो एक हूँ।" और वह कमरे में गया। त्रिबेनी ने उधर ध्यान न दे कर कहा, "बैठिए।"

व्यक्ति के बैठने से पूर्व वह ही कमरे से बाहर चली गयी। चौक में पहुंच कर उसे अचरज हुआ कि उसने यह चूल्हे में पानी कब डाल दिया, क्यों डाल दिया ? क्या अब अँगीठी में आग सुलगावे ? उसने अँगीठी ली और आँगन से हो कर घर के बाहर चली।

व्यक्ति ने आँगन में से जाते हुए उसे देख कर कहा, "क्या कर रही हो—क्या इरादा है ?"

लेकिन त्रिबेनी ने उसकी बात सुनी भी नहीं और बाहर जा कर एक पड़ोसिन से कहा, "बीबी जी, अपने हेम से चार पैसे की दही मँगा दो। और रबड़ी—चार पैसे की रबड़ी। और दो बीड़ी पान। और तुम्हारे घर में आँच हो गयी है ? दो कोयले आँच के और दे दो, बीबी जी। मुझे जल्दी है।"

कह कर पड़ोसिन को पैसे दिये और अँगीठी में कोयले ले

कर चली आयी। जा रही थी, तब व्यक्ति ने फिर कहा, "यह क्या कर रही हो?" लेकिन त्रिबेनी ने कुछ नहीं सुना। चौके में जा अँगीठी में कोयल डाल कर वह जल्दी-जल्दी फूँक मार कर उन्हें दहकाने में लगी रही। आँच हो गयी, तब वही आलू की बटलोई उस पर रख दी।

अब कमरे में आयी। अतिथि ने कहा, "यह क्या कर रही हो? देखना कुछ—"

वह बोली, "मास्टर जी यहाँ नहीं हैं—"

"नहीं हैं? कब आयेंगें?"

"मालूम नहीं। देर भी हो सकती है।"

"कितनी देर?"

"मालूम नहीं।"

"अच्छा तो मैं चलूँ। मिलना था। मुझे इसी गाड़ी से जाना भी है।"

"आप-मास्टर जी से ही मिलने आये थे? वह तो हैं नहीं।"

व्यक्ति कुछ देर त्रिबेनी को देखता रहा। वह भी देखती रही। सहसा वह बोला, "मेरा ताँगा खड़ा है—ताँगे वाला इन्तज़ार करता होगा।"

त्रिबेनी ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप खड़ी रही। जब देखा कि उसे बोलना ही होगा, नहीं तो कहीं यह आदमी प्रत्याशा में उसे देखता ही न जाय, तब बोली, "मैं क्या कह सकती हूँ।" आप आये हैं। जाना चाहें तो रोकने वाले मास्टर जी होते, वह हैं नहीं। क्या उनके नाते मैं रुकने को कह सकती हूँ?"

व्यक्ति ने कहा, "त्रिबेनी, हम सच क्यों न बोलें? सच यह है कि मुझे मालूम नही। और अब तो कल मझे कानपुर जरूर पहुँचना है। यह आखिरी गाड़ी है। मुझे जाने दो, त्रिबेनी।"

त्रिबेनी ने कहा, "जाओ न। मैं क्या कुछ कहती हूँ?"

"लेकिन तुम नाराज़ तो नहीं हो?"

"नाराज़। नाराज़ हो कर क्या कर लूँगी?"

"देखो त्रिवेनी, इसी से मुझे और भी चलना चाहिए। लो, मैं चला।" व्यक्ति कुर्सी से उठा। त्रिबेनी दरवाजे की राह छोड़ अलग हो गयी। जैसे किसी राह के बीच में हो कर खड़ी होने वाली वह कौन है? वह कोई नहीं है। पति की पत्नी है और पति इस समय नही है।

व्यक्ति मुड़ कर त्रिबेनी की ओर देखता हुता खड़ा रह गया।

त्रिबेनी कुछ नहीं बोली। व्यक्ति चल कर आँगन म आ गया। कमरे में से ही अब त्रिबेनी ने कहा, "लेकिन सुनो। मैं पूछती हूँ, तुम आये क्यो?"

व्यक्ति मुड़ कर त्रिबेनी की ओर देखता हुआ खड़ा रह गया। दिन हुए जिन्दगी में एक बात आयी थी। वह आयी नहीं की बीत गयी। उस नन्ही-सी बात की समाधि के ऊपर से बरस-के-बरस धड़धड़ाते हुए निकल गये हैं। वह बीती बात उन सब वर्षों को व्यर्थ बना कर आज कोंपल फोड़ कर हरी हरी उठ आना चाहती है क्या। न, न, सो न होने देना होगा। अतिथि कुछ न बोला।

त्रिबेनी ने फिर कहा, "नहीं आते तो कुछ हर्ज था?"

व्यक्ति यह सुन कर एकाएक लौट कर कमरे में आ गया और कुर्सी पर बैठ गया, बैठ कर थिरता से बोला, "सुनो त्रिबेनी, इस के बाद गाड़ी रात को एक बजे जाती है। लेकिन खैर। एक काम करो। ताँगे में से सामान मँगवा लो।"

"सामान मँगवा लूँ?"

हाँ, मँगवा सकती हो। यह हैं ताँगे वाले के पैसे। पर त्रिबेना बड़ी दया हो अगर न मगवाओ। मेरे यहाँ रहने से किसको

सुख मिलेगा ? तुम को नहीं, मुझ को नहीं। फिर किस को ? ... त्रिबेनी, मैं फिर कहता हूँ, मुझ को जाने दो।"

त्रिबेनी कुछ देर चुप रही। फिर धीमे बोली, "मैं तो कुछ भी नहीं कहती। मैंने कभी तुम्हें लिखा ? तुम्हें बुलाया ? फिर तुम क्यों आये ?"

व्यक्ति लज्जा से कुछ लाल हो आया, जैसे अभियुक्त हो, बोला, "मैं यह नहीं जानता था, त्रिबेनी। सच, नहीं जानता था। नहीं तो—"

उस समय शीघ्रता से त्रिबेनी ने कहा, "जाना बिल्कुल ज़रूरी है ? बिल्कुल ?"

"ज़रूरी ?—लेकिन मैं तुम को एक क्षण भी दुःख नहीं दे सकता, त्रिबेनी। इसलिए बिल्कुल ज़रूरी है।"

इतने में पड़ोसिन का वह लड़का हेम 'चाची' चाची, कहता हुआ अन्दर आया और चार-चार पैसे का दही और रबड़ी और दो बीड़े दिखा कर बोला, "चाची, देख, मैं दौड़ कर लाया हूँ। दही वाला कम देता था। मैं भला कम लेने वाला हूँ ? मेरा नाम है, हेम। मैं ने कहा, रखता है या नहीं। चाची, रखवा के छोड़ा, रखवा के। चाची अब तुम्हीं बताओ, इस काम का मेरा एक पैसा हुआ कि नहीं ? क्यों चाची ?"

चाची त्रिबेनी ने कहा, "एक नहीं, दो। ला, ये चीज़ यहाँ मोढ़े पर रख दे। और देख, हेम भैया, चौके में से दौड़ के एक तश्तरी तो ले आ।"

तश्तरी आ गयी। सामान उस पर रख दिया गया। दो पैसे हेम ने पाये और वह उछलता हुआ भाग गया।

अब त्रिबेनी ने अतिथि से कहा, "तो मैं खाना न बनाऊँ ?"

अतिथि ने आश्चर्य से कहा, "खाना ? खाना बनाने की सोच रही थीं ?"

"कहो तो न बनाऊँ।"

अतिथि ने ज़ोर से कहा, "नहीं, बिलकुल नहीं। मैं मानता हूँ, मैंने गलती की, मैं आया। मैं नहीं खाऊँगा। मैं नहीं खा सकता। मैं इसी गाड़ी से चला जाऊँगा।"

त्रिबेनी उसे देखती रही। बोली, "इन चीज़ों को वापिस कर दूँ? दस पैसे खर्च हुए हैं। दस पैसे,––जानते हो? पर तुम बड़े आदमी हो––क्या जानोगे।" कह कर वह कठिन हँसी-हँसी। बोली, "और इन्हें वापस कौन करेगा?"

व्यक्ति कुछ देर तो मानो सहमा सा रह गया। फिर एका-एक वह भी खिल कर हँसा। ज़ोर से बोला, "छोड़ो––छोड़ो। अच्छा वह बताओ, तुम्हारे क्या बाल-बच्चे हैं?" कह कर वह और भी हँसा।

त्रिबेनी की मुस्कराहट फैल गयी, पर वह मुस्कराहट कठिन से और कठिन हो आयी। बोली, "बाल-बच्चा! है क्यों नहीं। हुए चार, है एक। बाहर तुम्हें कोई नहीं मिला?"

व्यक्ति की हँसी भी इस पर सहसा रुक गयी। मूढ़ बना वह बोला, "क्या––आ?"

त्रिबेनी न उसी भाव से कहा, "क्या––आ नहीं, बाल-बच्चा। सच तुम्हें बाहर कोई नहीं मिला?"

व्यक्ति ने हँस कर कहा, "तुम जाने कैसी बात करती हो। पर, सचमुच एक लड़के से मैंने मकान पूछा था। वह धरती पर पड़ा था। मेरी बात सुन कर चुपचाप उठा और मुझे यह मकान बता गया। फिर जाकर वहीं लेट गया। लेकिन तुम कह क्या रही हो?"

"मैं कह रही हूँ, 'बाल-बच्चा।' और उस की हँसी और भी अनबूझ हो गयी।

त्रिबेनी की इस हँसी को देख कर व्यक्ति काँप कर पीला

पड़ गया। फिर एकाएक व्यस्त भाव से बोला, "देखो—देखो, मैं कहता न था, मुझे जाना चाहिए। देखो, अब तुम रो रही हो। मैंने, सच, बड़ी भूल की, मैं आया। मुझे माफ करो, त्रिवेनी। मैं चला। त्रिवेनी, इसी मिनट चला जा रहा हूँ। फिर तुम क्यों रोओ?"

इस आदमी के मन की व्यथा को क्या वह समझती नहीं?...तब वह उसे अपने आँसुओं से कैसे बढ़ा दे? उसे अपना दुःख अपना पाप मालूम हुआ। वह गुमसुम खड़ी रह गयी। आँखों में जो पानी आ रहा था, वहीं रुक गया। और सचमुच वह प्रसन्न बनी बोली, "कभी राजी-खुशी का खत साल-छः महीने में नही डाल दे सकते? इतना काम रहता है।"

व्यक्ति ने रुक कर कहा; "काम? पर अब तो खत नहीं ही डाल सकता। बताओ; क्यों डालूँ? और राज़ी-खुशी। ओह, राज़ी और खुशी तो मैं सदा का हूँ।"

त्रिवेदी ने असमंजस में कहा, "अच्छा-अच्छा। जैसी तुम्हारी मर्जी। मेरी कुछ इच्छा नहीं है। खुश रहो, यह चाहिए।...अच्छा, और तो कुछ न खा सके, लो, यह पान तो ले लो।"

हाथों से उठा कर त्रिवेनी ने तश्तरी सामने कर दी।

अतिथि ने रुक कर क़हा, "पान, मैं—"

त्रिवेनी अब भी हठात् मुस्करायी। बोली, "पान भी नहीं खाते? तो, जाने दो।" व्यक्ति ने उस मुर्झायी मुस्कान को देखा और जल्दी मचा कर कहा, "अच्छा लाओ, जल्दी लाओ।" और रख कर फिर उठायी हुई त्रिवेनी के हाथों में थमी तश्तरी में से मानो झपट कर बीड़ा उठा लिया।

त्रिवेनी ने कहा, "इधर स्टेशन तो कभी गुज़रते होंगे। यदि

काम का हरज न हो, छटे-छमाहे दर्शन दे दोगे तो ऋण रहेगा।"

व्यक्ति ने कहा, "ऋण । तुम जानती नहीं, त्रिवेनी । लेकिन तुम्हारे प्रताप से अब यह कसूर मुझ से न होगा।"

यह कह कर वो हठ-पूर्वक अपने को सँभाल कर चल ही दिया। पान हाथ में रहा।

त्रिवेनी देखती रही, देखती रही । फिर मानो मूर्च्छा से जाग कर एक दम कर्तव्य-तत्पर हो पड़ी। सोचने लगी—रात को जब पति आवेंगे, मैं उन से क्षमा माँग कर अपने आँसुओं से उन का सब क्रोध बहा दूँगी। मैं बड़ी स्वार्थिन हूँ, बड़ी स्वार्थिन हूँ। इसी तरह की बातें सोचते-सोचते वह बाहर गयी और बच्चे को गोद में उठा कर चूमती हुई घर ले आयी । उस से रो-रो कर माफी माँगने लगी और मनाने लगी। लेकिन बच्चे ने जब तक दोने की पूरी रबड़ी नहीं खा ली तब तक नहीं प्रकट होने दिया कि उसका क्रोध तनिक भी मन्द हुआ । उस समय उस नारी में यह भाव हुआ कि यह बच्चा इतना बड़ा क्यों हो गया कि मैं आज इसे अपना स्तन्पान नहीं करा सकती ! उस की छाती में मानो दूध उमड़ने लगा।

सियारामशरण गुप्त

[जन्म सन् १८९५]

चिरगाँव, झाँसी के एक विद्याव्यसनी वैष्णव वैश्य कुल में जन्म लेकर सियारामशरण गुप्त ने घर ही में शिक्षा पायी। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुज होने के कारण सियारामशरण जी की प्रतिभा अनुच्छायित होती रही और आरम्भ से उसे वह सम्मान नहीं मिलता रहा जिस की वह पात्र है, वह प्रतिभा कविता, कहानी उपन्यास, निबन्ध सभी क्षेत्रों में प्रकट हुई है। कई वर्षों से श्वास रोग से पीड़ित होने के कारण लिखना कम हुआ है, फिर भी काव्यों के अतिरिक्त तीन उपन्यास और कई कहानियाँ लिख चुके हैं, एक नाटक भी। उन के निबन्ध अपने ढँग के अनूठे हैं।

सियारामशरण जी साधक वृति के अत्यन्त विनयशील और सहृदय कलाकार हैं। उन की कहानियों में एक निर्व्याज जीवन-प्रेम और व्यापक करुणा की अभिव्यक्ति मिलती है। गान्धी-दर्शन का उन पर गहरा प्रभाव है, और अहिंसा, जीव-दया, मानव प्रेम और दलितों के प्रति उदार सहानुभूति के आदर्श उन की रचनाओं को अनुप्राणित करते हैं। उन की शैली सरल है, और भा[illegible]मयी।

सियारामशरण गुप्त

बैल की बिक्री

कई साल से फ़सलें बिगड़ रही थीं। बादल समय पर पानी नहीं देते न। खेती के पौदे अकाल-वृद्ध होकर असमय में ही मुरझा रहे थे। परन्तु महाजनों की फसल का हाल ऐसा न था। बादल ज्यों-ज्यों खिचते, उन की खेती में त्यों-त्यों नये अंकुर निकलते थे।

सेठ ज्वालाप्रसाद उन्हीं महाजनों में से थे। विधाता के बर से उन का धन अक्षय था। जिस किसान के पास पहुंच जाता, जीवन भर उस का साथ न छोड़ता। अपने स्वामी की तिजोरी में निरन्तर जा कर भी दरिद्र झोपड़ी की माया उस से छोड़ी न जाती थी।

मोहन बरसों से ज्वालाप्रसाद का ऋण चुकाने की चेष्टा में था, परन्तु वह कभी सफल न होती थी। मोहन का ऋण दरिद्र के वंश की तरह दिन पर दिन बढ़ता ही जाता था। इधर कुछ दिन से ज्वालाप्रसाद भी कुछ अधीर-से हो उठे थे। रुपये अदा करने के लिए वह मोहन के यहाँ आदमी-पर-आदमी भेज रहे थे।

समय की खराबी और महाजन की अधीरता के साथ मोहन को एक चिन्ता और थी। वह थी जवान लड़के, शिबू कि

निश्चिन्तता । उसे घर के काम-काज से सरोकार न था। बिलकुल ही न था, यह नहीं कहा जा सकता। भोजन करने के लिए यथा-समय उसे घर आना ही पड़ता था। बाप, मजूरी के पैसे ला कर किस जगह रखता है, उस के ऊपर दृष्टि रखनी पड़ती थी। पता मिल जाने पर बीच-बीच में उन्हें सफाई के हाथ से उड़ाना भी पड़ता था। ऐसे ही और बहुत काम थे। दो-चार बार उसे बैल-गाड़ी किराये के लिए चलानी पड़ती थी । सम्भव है, यह बेगार आगे चल कर और अधिक करनी पड़ती । परन्तु हाल में यह सम्भावना भी असम्भव हो गयी है । अचानक एक दिन दो-चार घंटे की बीमारी से हाल में ही उसका बैल चल बसा था। इस प्रकार ईश्वर ने उस के स्वच्छन्द विचरण के पथ में एक सुविधा और कर रक्खी थी । घर वालों के साथ उस का वही सम्बन्ध जान पड़ता था जो खेती के साथ उन बादलों का होता है, जिन के दर्शन ही नहीं होते--यदि कभी होते भी हैं तो आये हुए धान्य को खेत में ही सड़ा देने भर के लिए।

परन्तु बादल चाहे जैसी शत्रुता रखें, खेती के लिए उन से प्यारी वस्तु और कोई नहीं होती । मोहन भी शिबू का विचार इसी दृष्टि से करता था। सोचता था, अभी बच्चा है। हमेशा ऐसा ही थोड़े रहेगा । जब वह शिबू की कोई बात आयी-गयी कर जाता तब उसे अपने मृत पिता की याद आ जाती । उसने भी अपने पिता से कम नहीं खिझाया था। पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे बड़ा साधन कदाचित बच्चे को प्यार करना ही है । शिबू का यथेच्छाचार क्षमा करते समय प्रायः मोहन का हृदय गद् गद् हो उठता था।

उस दिन कलेवा करके शिबू बाहर निकल रहा था । मोहन ने पीछे से कहा, "लल्लू आज मुझे एक काम पर जाना है। बैल की सार साफ करके तुम उसे पानी पिला देना।"

शिवू ने बाप की ओर मुड़ कर कहा, "मुझ से यह बेगार न होगी। मुझे भी एक जगह जाना है।"

मोहन जानता था कि काँच की तरह सीधी गरमी दिखा कर इसे झुकने की इच्छा रखना मूर्खता है। विनती के स्वर में बोला, "बेटा, मुझे काम है। नहीं तो तुझ से क्यों कहता? कौन बहुत देर का काम है।"

शिवू उसी तरह अविचल कंठ से बोला, "थोड़ी देर का काम हो या बहुत देर का, मुझे वाहियात कामों की फुर्सत नहीं है।"

मोहन झुँझला पड़ा। क्रोध हो कर बोला, "कैसा है रे। बैल को पानी पिलाना वाहियात काम बताता है। किसानी न करेगा तो क्या बाबू बन कर डाकखाने में टिकट बेचेगा?"

"ठीक तो कहता हूँ, नाराज़ क्यों होते हो? कितनी बार कहा, इसे बेच दो, अकेला बँधा-बँधा खा रहा है। सार साफ़ करो, पानी पिलाओ, भूसा डालो। इधर से उधर बाँधो, उधर से इधर। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। किसी काम आता हो तो बात भी है।"

"चुप रह। घर में जोड़ी न होती तो इतनी बातें बनाना न आता। बैल किसान के हाथ पैर होते हैं। एक हाथ टूट जाने पर कोई दूसरा भी कटा नहीं डालता। मैं इस का जोड़ मिलाने की फिक्र में हूँ, तू कहता है—बेच दो। दूर हो, जहाँ जाना हो चला जा। मैं सब कर लूँगा।"

"जा तो रहा ही हूँ। मैं कुछ ऐसा दबैल नहीं हूँ।" हँस कर कहता हुआ शिबू घर के बाहर हो गया। मोहन। मोहन कुछ देर ज्यों-का-त्यों खड़ा रह कर, बड़बड़ाता हुआ उठा और जा कर बैल को थपथपाने लगा। शिबू ने उस की जो अवज्ञा की थी मानो उस की क्षति-पूर्ति करने के लिए अपने हृदय का समस्त प्यार ढालने लगा।

उस दिन मोहन ने सार की सफ़ाई और अच्छी तरह की। बैल को पानी पिलाने ले गया तो सोचा, इसे नहला दूँ। उजड्ड लड़के ने बैल का जो अपमान किया था, उसे वह उसके अन्त-स्तल तक से धो देना चाहता था। नहला चुकने पर अपने अँगोछे से पानी अँगौछा। बाँधने की रस्सी को भी पानी से धोना न भूला। सार में बाँध कर भूसा डाला। तब भी मन की ग्लानि दूर न हुई तो भीतर जाकर रोटी ले आया और टुकड़े-टुकड़े करके उसे खिलाने लगा। वह कहा करता था कि जानवर अपनी बात समझा नहीं सकते, परन्तु बहुत-सी बातें आदमियों से अधिक समझते हैं। इसलिए वह अनुभव कर रहा था कि बैल उसके प्रेम को अच्छी तरह हृदयंगम कर रहा है।

इस तरह आज इतना समय लग गया, जितना लगना न चाहिए था। यह बात उसे उस समय मालूम हुई जब ज्वालाप्रसाद के आदमी ने आ कर बाहर से पुकारा, "मोहन है ?"

मोहन सुन कर सन्न-सा खड़ा रह गया। उसे शिबू पर गुस्सा आया। अगर वह पाजी बैल का उसार कर देता तो वह इस आदमी को घर थोड़े मिलता। शंकित मन से बाहर निकल कर बोला, "कौन, रामधन भैया ! आओ, तमाखू पी लो।"

रामधन ने रुखाई से कहा, "फ़ुर्सत नहीं है। इसी दम मेरे साथ चलो। तुम-जैसे छँटे हुए आसामी से भी किसी का पाला न पड़ा होगा। तुम्हारे पीछे फिरते-फिरते पैरों में छाले पड़ गये, परन्तु मालिक साहब के दर्शन ही नहीं होते।"

सचमुच रामधन के पैरों में छाले पड़े हुए थे, इसी से उस का मिज़ाज ठीक न था। परन्तु छाले पड़ने का कारण मोहन के पीछे फिरना नहीं था- एक चमार आसामी ने मुफ्त में जूते बना कर कुछ दिन के लिए उस से छुट्टी पाने का वचन लिया था। उन जूतों ने रामधन को चलने-फिरने से ही कुछ दिन के लिए छुट्टी,

दे कर अपने निर्माता का लेन-देन बराबर कर देना चाहा। रामधन इस समय उसी चमार को नये-नये शब्दों में याद करता चला आ रहा था। मोहन ने देखते ही समझ लिया, मामला ठीक नहीं है। चुपचाप भीतर से ला कर अँगोछा कन्धे पर डाला ओर उस के पीछे हो लिया।

रास्ते में मोहन ने फ़सल खराब होने की वात शुरू की। किसानों का गुज़ारा किस तरह हो, इस वात की ओर संकेत किया। एक पैसे का सुभीता नहीं हैं, यह भी स्पष्टतः कहा। रामधन मुँह भारी किये हुए सुनता रहा। मानो उत्तर देना नितान्त अवश्यक हो गया, तब संक्षेप में कह दिया, "मालिक से कहना।"

मोहन ने कहा, "हमारे मालिक तो—"

"चुप रह वदमाश।" रामधन ने कहा। कहने का अभिप्राय था—मालिक मैं नहीं हूँ। उच्चारण भंगी का अभिप्राय था—मालिक हूँ तो मैं। "बड़ी देर की वकवक लगाये है, चुका नहीं सकता तो कर्ज़ा लिया ही किस लिए था?"

रामधन के साथ वह ज्वालाप्रसाद की कोठी पर जा पहुंचा। ज्वालाप्रसाद ने अपने स्वर में संसार भर का प्रभुत्व भर कर कहा, "वादे वहुत हो चुके। अब हमारे रुपये अदा कर दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा?"

मोहन ने कहा, "मालिक की बातें! खाने को मिलता नहीं, रुपये कहाँ से आय?"

वातों-ही-वात, में ज्वालाप्रसाद की जीभ की ज्वाला बेहद वढ़ उठी। 'नमकहराम', 'सूअर' आदि जितनी उपाधियों से एकदम वह निरीह मंडित हो उठा, उस सब के लिखने की यहां आववश्यकता नहीं है।

मोहन घर न जा सका। रुपये अदा कर दो और चले जाओ, बस इतनी ही बात थी।

शिबू ने तीसरे पहर घर आ कर देखा, दद्दा नहीं हैं। मालूम हुआ, सबरे ज्वालाप्रसाद के आदमी के साथ गये थे। दोपहर को रोटी खाने भी नहीं आये।

शिबू झपाटे के साथ घर से निकल कर ज्वालाप्रसाद के यहाँ जा पहुँचा। बाप को मुँह सुखाये, पसीने-पसीने एक जगह बैठा देखा। बोला, "चलो। आज रोटी नहीं खानी है?"

आवाज़ सुन कर दूर से ज्वालाप्रसाद ने कहा, "कौन है, शिबूआ? दाम लाया या यों ही लिवाने आ गया?"

शिबू ने अपने कर्कश कंठ को और भी कर्कश करके कहा, "तुम अपनी रुपट्टी लोगे या किसी की जान? अरे, कुछ तो दया होती। बूढ़े ने सबेरे से पानी तक नहीं पिया। तुम कम-से-कम चार दफे भोजन ठूँस चुके होगे।"

मोहन लड़के का ढंग देख कर घबरा उठा। बोला, "अरे ढोर, कुछ तो समझ की बात कर। किस से किस तरह बोलना चाहिए, आज तक तुझे यह शऊर भी न आया!"

"न आने दो। चलो उठो। मैं तुम्हें यहाँ कसाई की गाय की तरह न मरने दूँगा। रामपुर की हाट में सोमवार को बैल बेच कर उन की कौड़ी-पाई चुका दूँगा।" कह कर शिबू ने बाप का हाथ पकड़ा और उसे झकझोरता हुआ साथ ले गया।

ज्वालाप्रसाद हतबुद्धि होकर ज्यों-का-त्यों बैठे रहे। उन्होंने शिबू के जैसा निर्भय आदमी देखा न था। उन के मुँह पर ही उन्हें कसाई बना गया। गुस्से की अपेक्षा उन्हें डर ही अधिक मालूम हुआ। वे भी उसी हाट में रामपुर जा रहे थे। आजकल डाकुओं का बड़ा ज़ोर था। यह शिबुआ भी तो कहीं डाकुओं में नहीं है? कैसा ऊँचा-पूरा हृष्ट पुष्ट पट्ठा है। बोलने में किसी का

डर नहीं ; चलने में किसी का बन्धन नहीं । दिन-भर फिर किसी काम में ज्वालाप्रसाद का मन नहीं लगा । बार-बार उस का तेज-दृप्त चेहरा उन्हें याद आता रहा ।

दो दिन में हो ऐसा ज्ञान पड़ने लगा मानो मोहन बहुत दिन का बीमार हो । दिन भर वह बैल के ही विषय में सोचा करता । रात को उठ कर कई बार बैल के पास जाता । दिन में और लोगों के सामने अपना प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट करते हुए उसे संकोच होता था । रात के एकान्त में उसे अवसर मिलता । बैल के गले से लिपट कर प्रायः वो आँसू बहाने लगता । यदि कभी शिबू उस का यह आचरण देख लेता तो उसे ऐसा ज्ञान पड़ता मानो वह कोई अपराध कर रहा हो ।

हाट जाने के एक दिन पहले उस ने शिबू से कहा, "एक बात बेटा, मेरी मानना । बैल किसी भले आदमी को देना जो इसे अच्छी तरह रक्खे । दो-चार रुपये कम मिलें तो ख्याल न करना ।"

शिबू बिगड़ कर बोला, "तुम्हारी तो बुद्धि बिगड़ गयी है । जब देखो, 'बैल' की रट लगाथे रहते हो । मैं मर जाऊँ तो भी शायद तुम्हें बैल के जितना रंज न हो । बैल जिये या भाड़ में जाय, मुझे कोई मतलब नहीं । जो ज्यादा दाम देगा मैं उसी को बेच दूँगा । हमारा ख्याल कौन रखता है ? मैं भी किसी का न रखूँगा । उस कसाई के रुपये उस के मत्थे मार दूँ, मैं तो इतना चाहता हूँ । बस ।"

मोहन चुपचाप सुनता रहा । थोड़ी देर बाद एक गहरी साँस ले कर वहाँ से हट गया ।

जिस समय बैल की रस्सी खोल कर शिबू हाट के लिए जा रहा था, वहाँ मोहन न था । किसी काम के लिए जाने की बात कह कर वह पहले ही बाहर चला गया था ।

बैल बेच कर शिबू घर लौटा आ रहा था। रुपये उस की अंटी में थे। तो भी आज उस की चाल में वह तेज़ी नही थी, जो जाते समय थी। न जाने कितनी बातें उस के भीतर आ-जा रही थीं। बैल के विना उसे सूना-सूना मालूम हो रहा था। आज के पहले वह यह बात किसी तरह न मानता कि उस के मन में भी क्षुद्र प्राणी के लिए प्रेम था। मनुष्य अपने आप के विषय में जितना अज्ञान है, कदाचित् उतना और किसी विषय में नहीं है। वार-वार उसे बैल की सूरत याद आती। उस के ध्यान में आता, मानो विदा होते समय बैल भी उदास हो गया था। उस की आँखों में आँसू छलक आये थे। बैल का विचार दूर करता तो बाप का सूखा हुआ चेहरा सामने आ जाता। बैल और बाप मानो एक ही चित्र के दो रुख थे। लौट-फिर कर एक के बाद दूसरा उस के सामने आ-आ जाता था। आह, उस का बाप इस बैल को कितना प्यार करता था। उसे अनुभव होने लगा कि वह बैल उसका भाई ही था। एक ही पिता के वात्सल्य-रस मे दोनो पुष्ट हुए थे। जो बाप जानवर के लिए इतना प्रेमातुर हो सकता है, वह उसके लिए न जाने क्या करेगा? सोचते-सोचते उस का हृदय पिता के लिए आर्द्र हो उठा। वह हाय। अब तक अपने ऐसे स्नेहशील पिता को भी न पहचान सका। उस के हृदय का औद्धत्य आज अपने-आप पराजित हो गया था।

घने वन की छाती पर, पत्थर की पक्की सड़क, दोनों ओर के वृक्षों की छाया का उपभोग करती हुई, निर्जल और वस्ती की परवाह न कर के, बहुत दूर तक चली गयी थी। दूर-दूर तक आदमी का चिन्ह तक दिखाई न देता था। बीच-बीच में कुछ हिरन छलाँगें मारते हुए सड़क पार कर जाते थे। अचानक शिबू ने देखा, एक जगह बहुत-सी बैल-गाड़ियाँ ढिली हुई हैं। एक

ओर की निर्धनता के आधार पर ही दूसरी ओर की सघनता अवलम्बित है, मानो यही दिखाने के लिए ऊँची सड़क के दोनों ओर लगातार नीची खन्दकें चली गयी थीं। दो-तीन सौ आदमी उन खन्दियों में चुप-चाप दूर तक श्रेणीवद्ध बैठे हुए थे। शिब ने समझा, सड़क पर पुलिस के आदमी हैं। कुछ वसूल कर लेने के लिए इन आदमियों को परेशान कर रहे हैं। पुलिस का विचार आते ही उसका गर्बित हृदय विद्रोही हो उठा। विचारों की शृंखला छिन्न-भिन्न हो गयी। वह तेज़ी से चलने लगा।

"कौन है, खबरदार, खड़ा रह!"

शिबू ने देखा, पुलिस के सिपाहियों की पोशाक में बन्दूकें लिये हुए पाँच आदमी हैं। मुँह कपड़ों से इस तरह बाँधे हुए हैं कि सूरत साफ़ दिखाई न दे सकें। बीच सड़क पर कपड़ा बिछा हुआ है। उस पर रुपये पैसे और गहनों का ढेर लगा है। शिबू को समझने में देर नहीं लगी; डाकू हैं, सिपाही नहीं। दिन दहाड़े यहाँ लूट हो रही है। सड़क के नीचे खन्दियों में जो लोग बैठे हैं वे लुट चुके हैं। डाकुओं ने धन के साथ मानो उन की गति और बाणी भी अपहृत कर ली है।

हाँ तो एक डाकू फिर कड़क कर बोला, "कौन है, चला ही आ रहा है? खड़ा हो जा। रख दे जो कुछ तेरे पास हो।"

शिब्रू ने देखा, अब रुपये जाते हैं। उसे रुपयों का मोह कभी न था। रुपया पैसा उड़ाना ही उस का काम था। परन्तु ये रुपये...ये रुपये किस तरह आये हैं, यह बात वह अभी-अभी अनुभव करता आ रहा था। ज्यादा विचार करने का अवसर न था। वह छाती तान कर खड़ा हो गया। बोला, "मैं रुपये नहीं दूँगा।"

बोलने वाला डाकू शिब्रू का सुदृढ़ कंठ-स्वर सुन कर स्तम्भित

हो गया। इतने आदमी अभी लूटे गये हैं; इस तरह तो कोई नहीं कह सका।

दूसरा डाकू बन्दूक का कुन्दा मारने के लिए उस पर झपटा। शिबू ने बन्दूक के कुन्दे को इस तरह पकड़ लिया, जिस तरह सँपेरे साँप का फन पकड़ लेते हैं। अपने को आगे ठेलता हुआ वह बोला, "तुम मुझे मार सकते हो, परन्तु रुपये नहीं छीन सकते। यह रुपये मेरे बाप के कलेजे के खून में तर हैं। मेरे जीते जी महाजन के सिवा इन्हें कोई नहीं ले सकता।" यह कह कर शिबू ने अपने पूरे वेग के साथ निकल जाना चाहा। तब तक पाँच डाकुओं ने घेर कर उसे पकड़ लिया। वह उच्च कंठ से फिर चीत्कार कर उठा, 'छोड़ दो। मैं रुपया नहीं दूँगा।"

शिबू चीत्कार सुन कर लुटे हुए लोग खन्दियों में उठ कर खड़े हो गये। देखने लगे, कौन ह, जो प्रत्यक्ष मौत का सामना कर रहा है।

डाकुओं ने एकदम देखा—वे केवल पाँच हैं और दो-तीन सौ आदमी उन के विपक्ष में उठ खड़े हुए हैं। उन्हें विस्मय करने का भी अवसर न मिला कि बन्दूक के बल पर एक-एक दो दो करके इतने आदमी कैसे लूट लिये हैं। ये इसी उजड्ड की तरह बिगड़ खड़े हों तो कौन इनका सामना कर सकता है? भय और साहस संक्रामक वस्तुएँ हैं। शिबू का साहस देख कर उधर लुटे हुए लोगों का भय दूर हो रहा था। देखने तक का समय न था, परन्तु डाकुओं ने स्पष्ट देख लिया—एक साथ सब लोगों के भाव बदल गये हैं उन लोगों में से कुछ खन्दियाँ पार कर के सड़क तक भी नहीं आ सके कि डाकू बन्दूकें हाथ में लिये हुए द्रुत गति से सड़क के नीचे उतर गये। लूट का माल उठाने में समय नष्ट करने की अपेक्षा अपने प्राण ले कर भागना

ही उन्हें अधिक मूल्यवान प्रतीत हुआ। थोड़ी ही देर में वे लोग आँखों से ओझल हो गये।

लोगों ने आ कर शिबू को चारों ओर से घेर लिया। अधिकांश स्त्री-बच्चे और पुरुष अब तक भय के मारे काँप रहे थे। रोग की तरह दूर हो जाने पर भी भय शरीर को कुछ समय के लिए निःशक्त-सा कर रखता है। स्त्रियाँ शिबू को आशीर्वाद दे रही थीं—बेटा, तेरी हजारी उम्र हो। परन्तु शिबू इस समय भी अपने आपे में न था। वह सोच रहा था कि इन में अधिकांश ऐसे आदमी हैं, जो रुपये के लिए बुरे-से-बुरा काम कर सकते हैं। रुपया ही इनका सब-कुछ है। उसी रुपये को इन्होंने इस प्रकार कैसे लुट जाने दिया ?

भीड़ में से एक आदमी निकल कर शिबू के पास आया। बोला, "कौन हैं, शिबू माते ? तुमने आज इतने आदमियों को. . ." शिबू ने देखा, ज्वालाप्रसाद है। शरीर पर धोती के सिवा और कोई वस्त्र नहीं। डाकुओं ने रुपये-पसे के साथ उस के कपड़े भी उतरवा कर रखवा लिये। उसे देखते ही उसका मुँह घृणा से विकृत हो उठा। अंटी से रुपये निकाल कर उस ने कहा, "बड़ी बात, शिबू माते, तुम्हें आज यहीं मिल गये। लो, अपने रुपये चुकते कर लो। अब लुट जायें तो मैं जिम्मेदार नहीं।"

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

[जन्म सन् १९०६]

पश्चिमोत्तर पंजाब के एक गाँव में जन्म लेकर चन्द्रगुप्त जी न काँगड़ी गुरुकुल में शिक्षा पायी । पहली कहानी सन् १९३८ में प्रकाशित हुई थी कहानियों के अतिरिक्त नाटक भी लिखते रहे हैं ।

वर्णन की सरलता के साथ साथ वातावरण निर्माण की विलक्षण क्षमता चन्द्रगुप्त जी की कहानियों की विशेषता है। कई कहानियों में कथोपकथन भी बहुत कम रहता है और घटना भी, और कहानी का प्रभाव अभिव्यक्ति की कलामयता से ही उत्पन्न होता है । उसके पात्र प्रायः परिस्थितियों के ऊबड़-खाबड़ में भी अचंचल रह कर पाठक की सहानुभूति पाते हैं ।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मास्टर साहब

न जाने क्यों बूढ़े मास्टर रामरतन को कुछ अजीब तरह की थकान-सी अनुभव हुई और सन्ध्या-प्रार्थना समाप्त कर वे खेतों के बीचोबीच बने उस छोटे-से चबूतरे पर बिछी एक चटाई पर ही लेट रहे। सन् १९४७ के अगस्त मास की एक चाँदनी रात अभी-अभी शुरू हुई थी। मास्टर साहब ने जब सन्ध्या-प्रार्थना शुरू की थी तो आकाश पर छितराये बादलों में अभी गहरी लाली विद्यमान थी; परन्तु सन्ध्या समाप्त कर जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो सब तरफ़ चाँदनी व्याप्त हो चुकी थी और आकाश के एक भाग मे छाये हल्के-हल्के बादल रुई के बंडलों की तरह सफेद दिखाई देने लगे थे। पिछले दिनों बहुत गरमी रही थी—मौसम की भी और दिमाग़ की भी। मास्टर साहब का यह कस्बा जैसे दुनिया के एक किनारे पर है। नज़दीक-से नज़दीक का रेलवे स्टेशन वहाँ से तीस मील की दूरी पर है। फिर भी पिछले कितने ही दिनों से कितनीं अमंगलपूर्ण खबरें दिन-रात सुनने में आ रही हैं। सुना जाता है, मुसलमान हिन्दुओ और सिक्खों के खून के प्यासे बन गये हैं। दुनिया तबाह हो रही है। घर-बार लूटे जा रहे हैं! सब तरफ़ मार-काट जारी है।

मास्टर साहब के गाँव में अभी तक अमन-चैन है, फिर भी वहाँ के वातावरण में एक गहरा त्रास स्पष्ट रूप से छाया हुआ है।

चाँदनी रात की ठंडी हवा और चारों तरफ़ गहरा सन्नाटा। मास्टर साहब को जैसे राहत-सी मिली। थके हुए दिमाग़ का बोझ उतर-सा गया। ऊँह, ये सब झूठी अफ़वाहें हैं! कभी ऐसा भी हो सकता है। भला, जब मैंने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा, तो किसी को कुत्ते ने काटा है कि वह मेरे खून तक का प्यासा बन जाय। अपनी जिंदगी के पैंसठ बरस मैंने यहाँ बिताये हैं। मेरे शागिर्दों की संख्या हज़ारों में है। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान—सभी को मैंने एक समान दिलचस्पी से पढ़ाया है। कोई एकाएक मेरा दुश्मन क्यों बन जायगा? मगर यह पाकिस्तान। मास्टर साहब की दिमागी राहत को जैसे एकाएक ठोकर लग गयी। हूँ, यह पाकिस्तान तो अब सिर पर ही आने वाला है। मास्टर साहब के शरीर-भर में एक कँपकँपी-सी छूट गयी।

माँ प्रकृति ने जैसे अपने इस बूढ़े पुत्र को एक प्यार-भरी थपकी दी। हवा की ठडंक और भी बढ़ गयी। और चाँदनी का उजलापन और भी चमक आया। मास्टर साहब को सहसा अनुभव हुआ, यह तो वही दुनिया है जिसे देखने का अभ्यास उन्हें बचपन मे है। वही खेत हैं, जिन्हें उनके बाप-दादा उन के लिए छोड़ गये हैं। वही आसमान है, वही धरती है और वही सदैव ताज़ी बन कर बहने वाली हवा है। आख़िर पाकिस्तान इन सब को तो नहीं बदल डालेगा। ये सब तो उसी तरह कायम रहेंगे। आख़िर पाकिस्तान में भी इन्सान की मिल्कीयत रहेगी, काम-धन्धे रहेंगे, जबान रहेगी, लिखना-पढ़ना रहेगा। फिर मेरे जैसा फ़ारसीदाँ पाकिस्तान वालों को क्योंकर नागवार गुजरेगा? पकिस्तान बनेगा तो यह सब-कुछ बदल थोड़े ही जायगा। आख़िर कोई बाहर के लोग तो आ कर पाकि-

स्तान को नहीं बसायेंगे । पाकिस्तान एक दिन बनना ही था । चलो, वह हमारी ज़िन्दगी में ही बन गया ।

रात का सन्नाटा और भी गहरा हो गया और अपनी इस छोटी-सी जमींदारी के इस अत्यन्त सुरक्षित भाग पर लेटे-लेटे मास्टर साहब को नींद आ गयी। प्रभात की लाली आसमान पर दिखाई देने लगीं ही थी कि मास्टर साहब की नींद टूट गयी। सहसा उन्होंने पाया कि वातावरण अभी तक एकदम नीरव है । यहाँ तक चिड़ियों की चहचहाहट भी उन्हें सुनाई नहीं दी। मास्टर साहब उठ खड़े हुए और तेज़ी से गाँव की ओर चल पड़े।

एक खास तरह की मनहूसियत जैसे उन्हें चारों ओर फैली हुई दिखाई दे रही थी । राह में कितने ही मुसलमान किसानों के कच्चे कोठे हैं । उन कोठों के आसपास कितने ही बच्चों और औरतों को उन्होंने देखा । उन में से अधिकांश से वे परिचित थे, परन्तु आज सभी उन्हें कुछ बदले हुए से प्रतीत हो रहे थे । एक गहरी चुप्पी जैसे पुकार-पुकार कर उन्हें चेतावनी दे रही थी कि महाकाल की बेला सिर पर है। राह के किसानों के चेहरे ज़रूर गम्भीर थे, परन्तु मास्टर साहब से किसी ने कुछ भी नहीं कहा। वह तेज़ी से अपने गाँव की ओर बढ़ते गये ।

यह दूर पर क्या दिखाई दे रहा है ? मास्टर रामरतन सहसा चौंक पड़े। जिस तरफ़ उन का गाँव है, उधर ही सुदूर क्षितिज पर बहुत बड़े पैमाने पर यह काला-काला क्या दिखाई दे रहा है। ये बादल हर्गिज़ नहीं है ; क्योंकि बादल नीचे से ऊपर को नहीं जाया करते ! मास्टर साहब की चाल और भी तेज़ हो गयी । अब उन्हें सुदूर क्षितिज पर लाली भी दिखाई देने लगी । सुबह-सुबह पश्चिम में दिखाई देने वाली यह लाली स्पष्ट: किसी बहुत बड़े अमंगल की सूचक थी । बूढ़ा मास्टर

अपने परमात्मा से प्रार्थना करने लगा : और चाहे जो कुछ हो, यह अग्निकांड उस के गाँव में न हुआ हो । मगर यह तो स्पष्ट हो है कि उनका गाँव जल रहा है । बूढ़े मास्टर ने अपनी प्रार्थना की माँग और भी कम कर दी––चाहे उन का सारा गाँव जल जल कर भस्म हो जाय, उनके गाँव के सभी निवासी सही-सलामत बच जायँ ।

मास्टर साहब अब दौड़ने लगे । बहुत जल्द वह पसीना पसीना हो गये, पर उनकी दौड़ जारी रही। कुछ दूर पहुंच कर एक अत्यन्त त्रासदायक महानाद सा भी उन्हें सुनाई देने लगा, जैसे सैंकड़ों नर नारी एक साथ हाहाकार कर रहे हों।

बूढ़े मास्टर ने अपनी प्रार्थना की माँग और भी कम कर दी : चाहे कितने हीं लोग कत्ल भी क्यों न हो जायँ, उन के गाँवकी किसी लड़की का अपमान न होने पाये ।

और तभी सहसा चिन्ता के एक बड़े तूफान ने उनके हृदय को एक सिरे से दूसरे सिरे तक झकझोर कर रख दिया । ओह-उनके परिवार की सब स्त्रियाँ और बच्चे गाँव में ही थे। और उन की लाड़ली पोती निर्मला, जिस की पन्द्रहवीं वर्षगाँठ अभी पाँच ही दिन हुए बीती है ।

मास्टर साहब के हृदय की सम्पूर्ण सदभिलाषाएं खुद ब खुद अपनी लाड़ली पोती निम्मो के चारों ओर केन्द्रित हो गयीं : ओ मेरे परमात्मा, ओ मेरे देवता, यह तेरी अपनी लज्जा का सवाल है । मेरी निम्मों को तू अपने पास भले ही बुला ले, उस की बेईज्जती मत हो देना ।

पूरब दिशा में अग्नि का पुंज सूरज निकल आया। मास्टर साहब अब अपने गाँव के काफी नज़दीक पहुंच गये थे । अब वह अकेले भी नहीं थे । उनके गाँव के कितने ही हिन्दू और सिक्ख खेतों में छिपे या गाँव की ओर से भाग के आते हुए

उन्हें दिखाई दिए। मास्टर साहब पसीने से तर-ब-तर हो गये थे। राह की धल उस पसीने लग कर वहीं द्रवीभूत होने लगी थीं। इस बहती मिट्टी से उन का मुँह, कपड़े और बाल बुरी तरह भर गये। फिर भी जिस किसी तरह वह दौड़ते चले गये और अपने गाँव की सीमा में आ पहुँचे।

मास्टर साहब ने आवाज़ दी : "नत्थूसिंह, मेरे घर का क्या हाल है?"

नत्थूसिंह उन का पड़ोसी था। वह इतना उदास दिखाई दे रहा था, जैसे उसकी निर्जीव दह-मात्र चल फिर रही हो। नत्थूसिंह नें मुँह से कुछ नहीं कहा, सिर्फ इस तरह सिर हिला दिया, जिस से उसकी असमर्थता प्रकट होती थी। मास्टर साहब ने कितने ही लोगो को पुकारा, पर जवाब कहीं के नहीं मिला। कुछ ही क्षणों के बाद मास्टर साहब अपने मोहल्ले के सामने विद्यमान थे। रात-भर में कितनी लाशों को लाँघ कर मास्टर साहब इस जगह तक पहुँच पाये।

मास्टर साहब का मोहल्ला पक्के मकानों का था। इसी से आग वहाँ बहुत फैलने नहीं पायी थी। किनारे के कुछ मकान ज़रूर जल गये थे और अब उन में से गहरा नीला-काला धुआँ उठ रहा था। पर मास्टर साहब का मकान ज़रा भी नहीं जलने पाया था और अब उधर आग बढ़ने का ख़तरा ही था। मास्टर साहब लपक कर घर के सामने पहुँचे। गली-भर में एक भी आदमी उन्हें दिखाई नहीं दिया। सब तरफ सन्नाटा था—मौत का गहरा सन्नाटा। कुत्ता, बिल्ली या कोई भी ज़िन्दा प्राणी गली में नहीं था। आसमान में परिन्दे तक नहीं थे। सिर्फ दूर पर जल रहे मकानों की ज्वालाएँ एक भयोत्पादक आवाज़ उत्पन्न कर रही थीं।

क्षण-भर को मास्टर साहब ठिठक गये। जो-कुछ हो बीता

है, उस का आभास उन्हें मिल भी गया था। फिर भी यह उम्मीद तो थी कि घर के लोग शायद बच गये हों। अगर यही उम्मीद क़ायम रह सकती तो! क्षण-भर के बाद मास्टर साहब ने सहमे-सहमे से आवाज़ दी, "निम्मो।"

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब ने पुकारा, "निम्मो की दादी। बेटा सत्ती; बेटा प्रकाश; बेटी सतवत्ती।"

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब धीरे-धीरे घर के भीतर प्रविष्ट हुए। घर के सब दरवाज़े चौपट खुले पड़े थे। अन्दर जैसे कोई झाड़ू-सा दे गया था। कहीं कोई चीज़ नहीं थी। गुंडे सभी कुछ उठा ले गये थे। भीतर जाते ही एक तरफ बैठक है। सब खाली। उस के बाद एक खुला सहन है। इस सहन के दाहिनी ओर दो कमरे हैं, जो सर्दियों में परिवार के सोने के काम आते हैं। दोनों कमरे एकदम खाली पड़े हैं। सहन की बायीं ओर एक दरवाज़ा है उस में से होकर एक और छोटे सहन में जाना होता है, जहाँ घर के जानवर बाँधे जाते हैं—एक बरामदा, एक कमरा जानवरों के लिए। इस वक्त सब खाली हैं। कमरे के पिछवाड़े में ज़रा-सी जगह खाली है, जिस के चारों ओर ऊँची दीवारें हैं। यहाँ मास्टर साहब की बूढ़ी घरवाली ने तुलसी के कुछ घने झाड़ बो रखे हैं और उन के पास एक चबूतरे पर वह नियमित रूप से भगवान की पूजा करती हैं। धड़कते दिल से मास्टर साहब इस झाड़ तक आ पहुँचे।

ओह, मेरे भगवान्। यह सब क्या सच है? तुलसी के उन झाड़ के नीचे नन्हें सत्ती और नन्हें प्रकाश के क्षित-विक्षत निष्प्राण देह पड़े हैं, मानो अनजान शिशु डर कर माँ तुलसी गोद में आसरा पाने आए हों। उधर चबूतरे पर माँ बेटी—

मास्टर साहब की जीवन-संगिनी अपनी बड़ी लड़की से चिपक कर—पड़ रहीं हैं। निष्प्राण, निस्पंद !

क्षण-भर के लिए मास्टर साहब को प्रतीत हुआ, जैसे वे स्वयं निष्प्राण हो गये है; उन के हृदय की सम्पूर्ण अनुभूति सन्न हो कर एकदम निष्क्रय बन गयी है। परन्तु अभी तो मास्टर साहब ने सभी कुछ नहीं देखा। उन की लाड़ली निम्मो कहाँ है ?

बूढ़े मास्टर की बेहोश होती हुई चेतना खुद-ब-खुद लौट आयी। वे अत्यन्त करुण स्वर में चीख़ उठे, "निम्मो, निम्मो, निम्मो !"

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला।

उस के बाद घंटो की महनत से मोस्टर रामरतन रात के महाप्रलय के सम्बन्ध में जो-कुछ ज़ान पाये, उस का सार इतना ही था कि चाँद डूबने से घंटा-भर पहले मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या ने गाँव के उस भाग पर हमला कर दिया, जिसमें हिन्दू और सिक्ख रहते थे। यह हमला इतना अचानक और इतने ज़ोर से हुआ कि उसका मुकाबला किया ही नहीं जा सका। आक्रमणकारी लोगों में बहुत बड़ी संख्या आसपास के तथा दूर से आये मुसलमान किसानों की थी, परन्तु यह कह सकना कठिन है कि गाँव के मुसलमान भी उसमें शामिल थे या नही। भयंकर मार-काट और लूट-मार के बाद गुंडे लोग गाड़ियों में भरकर लूटा हुआ माल अपने साथ ले गये हैं। गाँव की बीसों जवान लड़कियों को भी वे अपने साथ लेते गये हैं। वे लोग ही बच पाये, जो रात के वक्त घरो से भाग कर खेतों में जा छिपे या दूर भाग गये। वे सब लोग अब एक जगह इकट्ठे कर लिए गए हैं और उन्हें नये हिन्दुस्तान में भेजने का

इन्तज़ाम किया जा रहा है । मास्टर साहब के एक पड़ोसी ने इतना ही बताया कि जब वह उनके घर के सामने से हो कर भागा जा रहा था तो घर के भीतर से भयंकर हाहाकार सुनाई दे रहा था । निम्मो के सम्बन्ध में सभी का यह ख़याल था कि गुंडे ज़रूर उसे अपने साथ उठा ले गये हैं ।

बूढ़े मास्टर की परेशानी सीमा न रही । जन्म-भर के उस अत्यन्त ईश्वर-परायण वृद्ध की अन्तरात्मा ने अपने उस अज्ञात अराध्यदेव से पूछा—"मेरे किस अपराध की सजा इस छोटी-सी, मासूम सी बच्ची को मिली है, ओ मेरे देवता ?"

अपनी जीवन-संगिनी, बड़ी विधवा पुत्री और दोनों पोतों को एक-साथ खो कर बूढ़े मास्टर के लिए जिन्दगी में क्या दिलचस्पी बाकी रह सकती थी ? अच्छा होता कि वह भी साथ मर जाते । पर मास्टर अब यह बात सोच भी नहीं सकते थे । उन की लाडली पोती निम्मो जिन्दा है और वह गुंडों के हाथ में है ।

अपना जीवन-ध्येय चुनने में मास्टर साहब को सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी । वह तो जैसे आसमान पर लिखा हुआ-सा उनके सामने आ गया । बूढ़े मास्टर ने निश्चय किया कि वह जिस किसी तरह निम्मो की तलाश करेंगे, किसी-न-किसी तरह उस के पास पहुंच जायेंगे और—? साफ़ था कि बूढ़ा उसे बचा नही सकेगा—तब ? निम्मो के पास पहुंच कर बूढ़ा दादा अपने हाथों अपनी पोती की हत्या करेगा और उसके बाद खुद भी मर जायगा ।

साँझ तक गाँव के भले मुसलमानों की मेहनत से वे सब हिन्दू और सिख एक धर्मशाला में एकत्र कर दिे गये, जो प्रभात के महाप्रलय से बाकी बच रहे थे । थाने से दो चार सिपाही भी उनकी देख-भाल के लिये आ पहुंचे और उन्हें ज़िले की ओर ले जाने का प्रबन्ध किया जाने लगा । परन्तु मास्टर रामरतन

इन लोगों में नहीं थे : न-जाने वह किस वक्त चुपचाप गाँव से खिसक गये।

गाँव छोड़ने के तीन दिनों के भीतर ही मास्टर रामरतन का जैसे कायाकल्प हो गया। मुँह की झुर्रियाँ और भी गहरी हो गयीं, आँखें एक तरह से गढ़े में चली गयीं और उनके नीचे कालिमा-सी पुत गयी। ये तीन डरावने दिन उन की पैंसठ साल की ज़िन्दगी पर जैसे पूरी तरह छा गये। मास्टर साहब का चेहरा ग़मगीन और इतना गम्भीर दिखाई देने लगा, जैसे वे अपनी ज़िन्दगी में कभी न हँसे हों और न मुस्कराये ही हों।

किसी अपरिचित के लिए यह पहचान सकना अब आसान नहीं था कि मास्टर साहब हिन्दू हैं या मुसलमान। बेतरतीबी से बढ़े हुए और बेपरवाही से बिखरे हुए उन के धूलि-धूसरित बालों ने उन की आकृति पर फ़कीरी की छाया डाल दी थी— एक फ़कीर, जो न हिन्दू होता है और न मुसलमान। वह फ़कीर बन ही तभी सकता है, जब वह इस दुई को, इस भेद भाव को, एकदम भूल जाय।

आसपास की कितनी ही बस्तियों और गाँवों की ख़ाक छानते-छानते मास्टर साहब को यह मालूम हो गया कि उन के गाँव पर आक्रमण करनेवालों का मुखिया एक पूरे गाँव का ज़मींदार गुलामरसूल था और यह भी कि वह कितनी ही हिन्दू लड़कियों को अपने साथ घर ले गया है।

राह की एक सुनसान पगडण्डी पर चलते-चलते सहसा बूढ़े मास्टर को अनुभूति हुई कि वह अपने लक्ष्य के बहुत नज़दीक आ पहुँचे हैं। इस अनुभूति के साथ-ही-साथ उन का हाथ जैसे ख़ुद-ब-ख़ुद जेब में पहुँच गया, जहाँ एक चाकू संभाल कर रखा गया था। बूढ़े मास्टर ने चारों ओर एक खोजती निगाह डाली और जब दूर तक उन्हें और कोई मानव-आकृति नहीं दिखाई

दी, तो काँपते हाथों से उन्होंने वह चाकू जेब से बाहर निकाल लिया। चलते-चलते बायें हाथ में चाकू पकड़ कर दाहिने हाथ से उसे खोला और बिना रुके ही दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली से उस धार की परीक्षा की। बूढ़े का हाथ बुरी तरह से काँप रहा था। इस से उँगली की मोटी चमड़ी ज़रा सी कट गयी और उस पर खून चमक आया। चार दिनों में पहली बार मास्टर को उत्साह की अनुभूति हुई। एक अजीब तरह की उत्तेजना उन के थके हुए मन पर छा गयी। हाँ मैं अपना काम बखूबी कर सकूँगा। इस तेज़ चाकू से एक हत्या और उस के बाद आत्महत्या। चाकू बन्द कर के उन्होंने जेब में डाल लिया और डगमगाते पैरों कि गति स्वमेव तेज होने गयी।

गुलामरसूल का घर तलाश करने में मास्टर साहब को देर नहीं लगी। कुल मिला कर पच्चीस-तीस मकान थे और उन में सब से बड़ा और सब से ऊँचा मकान जमींदार का था। उन्होंने मकान के दरवाजे पर दस्तक दी। क्षण-भर में मकान के सहन का दरवाजा खुल गया और एक बच्चे ने आकर पूछा, "क्या चाहिए?"

मास्टर साहब सहसा चौंक गये। बच्चे की उमर उन के चार साल के सत्ती से अधिक नहीं थी। तो अभी तक दुनिया में मासूम बच्चे मौजूद हैं। इस महान् हत्यारे के घर उन का स्वागत एक बच्चा करेगा इसकी उम्मीद उन्हें कदापि नहीं थी। मास्टर साहब के झिझक-भरे मौन पर वह बच्चा चकित होने वाला ही था कि उन्होंने कहा, "मियाँ गुलामरसूल घर पर हैं?"

"कौन, अब्बा?"

"हाँ तुम्हारे अब्बा।"

इसी वक्त भीतर से एक नारी-कण्ठ सुनाई दिया, "कौन आया है बेटा हमीद?"

बच्चे ने जवाब दिया, "कोई फ़कीर है, अम्मी। अब्बा का पूछता है।"

बड़े दरवाजे के दाहिनी ओर घर की बैठक थी। क्षण-भर बाद बैठक का दरवाज़ा खुल गया और बड़ी उम्र के एक अन्य लड़के ने मास्टर साहब से भीतर चलने को कहा। बैठक में कुछ मोढ़े रखे थे। एक तरफ एक पलंग पड़ा हुआ था। मास्टर साहब चुपचाप एक मोढ़े पर जा बैठे।

वह लड़का बड़ी हैरानी से मास्टर साहब की ओर देख रहा था। उन के बैठ जाने पर उस ने पूछा, "चचा से क्या कह दूं? वह साथ के मकान में गये हैं। म अभी जा कर उन्हें बुला लाता हूं।"

मास्टर साहब इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। फिर भी उन के दिमाग़ ने उन्हें धोखा नहीं दिया। मास्टर साहब आज सुबह नूरपुर से इस गाँव की ओर चले थे। उन्होंने कह दिया "चचा से कहना नूरपुर से पैग़ाम आया है।"

लड़का चला गया और मास्टर साहब को जैसे ज़रा सोच सकने की फुरसत मिली। यहाँ तो सब ठीक। अब आगे क्या होगा? गुलामरसूल अभी आता होगा। परन्तु वह अपनी तिम्मो को उस से माँग किस तरह सकेंगे? कोई बहाना तलाश करने से शायद काम बन जाय। यह तो साफ ही है कि सब लोग उन्हें मुसलमान समझने लगे हैं। क्यों न वह इसी बात का फ़ायदा उठाव। वह कह सकते हैं कि नूरपुर का जमींदार कुछ लड़कियाँ चाहता है और वह उन के लिये अच्छी क़ीमत भी देने को तैयार है। बहाने से वह सब लड़कियों को देखने की इच्छा प्रकट कर सकते हैं। और जहाँ तक भेद खुलने का सवाल है, उन्हें उस की चिन्ता ही क्या है। आख़िर वह तो अपनी जान देने ही यहाँ आये हैं। अगर उन की चाल असफल हो

गयी, तो वह गुलामरसूल पर तेज़ चाकू से हमला तो कर ही सकते हैं। जो-कुछ हो जाय, उतना ही सही। निकट-भविष्य में उन्हें क्या करना होगा, इस का निश्चय उन्होंने अनायास ही कर लिया।

और यह निश्चय कर लेने के साथ-ही-साथ उन्हें ध्यान आया कि उन का अन्त समय सिर पर है। कुछ ही क्षणों के भीतर वह अपने परिवार से जा मिलेंगे, अपने भगवान् के चरणों में जा पहुँचेंगे। मास्टर साहब मन-ही-मन राम-नाम का जाप करने लगे।

और सहसा एक अत्यन्त अप्रत्याशित घटना घटित हो गयी। जो छोटा बच्चा पहले-पहल मास्टर साहब का स्वागत करने दरवाज़े पर उपस्थित हुआ था, उसी हमीद का हाथ पकड़ कर सहसा निम्मो बैठक के दरवाज़े पर आ उपस्थित हुई। बूढ़ा मास्टर सहसा चीख उठा, "निम्मो।"

दरवाज़े पर हीं से निम्मो चिल्लायी, "दद्दा।"

और उसी क्षण बूढ़े रामरतन ने अपनी पन्द्रह बरस की पोती को गोद में उठा लिया। न जाने इतनी शक्ति बूढ़े मास्टर में कहाँ से आ गयी। भावों का पहला तूफान निकल जाने के बाद भी मास्टर को यह समझ में नहीं आया कि वह इस हालत में क्या करें। जेब में मौजूद तेज़ चाकू की उपस्थिति का ज्ञान उन्हें अब भी था; परन्तु जैसे चाहते हुए भी वह चाकू निकाल नहीं पाये। बूढ़े के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने पाया कि जैसे बच्चा हमीद निम्मो का साथ ही नहीं छोड़ना चाहता। मास्टर साहब के प्रेम का उफ़ान देख कर वह सहम-सा गया है और तब भी उसका दाहिना हाथ निम्मो के बायें हाथ को पकड़े हुए है।

मास्टर साहब अभी तक सकते की-सी हालत में थे कि सहसा

गली में शोर मच गया, "काफ़िर, काफ़िर !" मास्टर साहब अभी तब अपनी जेब से चाकू निकाल तक नहीं पाये थे कि दो जवान मुसलमानों ने उन्हें जकड़ कर पकड़ लिया । घर की एक बूढ़ी औरत ने घर में काफ़िर की मौजूदगी की सूचना बहुत शीघ्र मोहल्ले-भर को दे दी थी ।

और उसी वक्त गालियाँ बकते हुए गुलामरसूल ने अपनी बैठक में प्रवेश किया । मुमकिन था कि अपने नये कैदी को देखते ही गुलामरसूल उसे मारना-पीटना शुरू कर देता ; परन्तु कमरे में मौजूद सभी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब बढ़े मास्टर पर निगाह पड़ते ही वह जैसे अचम्भे में भर कर चिल्ला उठा, "ओ, मास्टर साहब !"

जिन दो नौजवानों ने मास्टर को पकड़ रखा था, उन की जकड़ एकाएक कम हो गयी । गुलामरसूल क्षण-भर के अन्तर से फिर चिल्लाया, "ओ, मास्टर साहब ! आप यहाँ कैसे ?"

और बूढ़ा मास्टर, जो इस अप्रत्याशित घटनाचक्र के प्रवाह में एकदम मूक और एकदम संज्ञाहीन-सा बन गया था, सहसा फफक कर रो उठा । दोनों जवानों ने मास्टर को अपनी पकड़ से मुक्त कर दिया और निम्मो अपने दादा से जा चिपकी ।

गुलामरसूल ने बूढ़े मास्टर को सान्त्वना देने का प्रयत्न किया किया । उसने कहा, "मास्टर साहब बचपन में जब हम रोया करते थे तो आप हमें चुप कराया करते थे और आज..." कहते-कहते सहसा गुलामरसूल चुप हो गया । न जाने किस शक्ति ने उसे यह अनुभूति प्रदान कर दी कि उसे यह सब कहने का अधिकार नहीं रहा ।

बात बदलने की गरज़ से गुलामरसूल ने कहा, "यह लड़की आप की क्या लगती है, मास्टर साहब ?"

बूढ़े मास्टर ने सिसकते हुए कहा, "यह मेरी पोती है ।"

गुलामरसूल ने कहा, "तभी !" और वह चुप हो रहा।

बूढ़ा मास्टर निम्मो को छाती से लगा कर अब भी धीरे-धीरे सिसक रहा था। उसने कोई सवाल नहीं किया। क्षण-भर गुलामरसूल ने खुद ही कहा—"शायद तभी चार ही दिनों में हमीद इसे अपनी सगी बहन समझने लगा है" और तब आसमान की ओर ताक कर उसने कहा, खुदा का शुक्र है।"

मानवीय सहानुभूति का हल्का-सा आसरा पा कर बूढ़े मास्टर के हृदय की सम्पूर्ण व्यथा आँखों की राह बह चली, जैसे गर्मी पा कर बर्फ़ पिघलती है।

कुछ क्षणों तक गुलामरसूल चुपचाप मास्टर साहब की ओर देखता रहा और उसके बाद धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उस ने बूढ़े मास्टर को छाती से लगा लिया। मास्टर साहब ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। गुलामरसूल ने बहुत धीमे शब्दों में कहा, "धीरज से काम लो, मास्टर साहब ! तुम्हें कोई भय नहीं है। निम्मो के साथ मेरी हिफ़ाजत में तुम चाहे जहाँ चले जा सकोगे।"

'अज्ञेय'

(सन् १९११)

कसिया, गोरखपुर में जन्म ले कर पहले घर में और फिर मद्रास तथा लाहौर में शिक्षा पायी, विज्ञान की शिक्षा पा कर साहित्य की ओर प्रवृत हुए। क्रान्तिकारी आन्दोलन में पड़ कर कुछ वर्ष जेल में रहे, यहीं से कहानी जगत में प्रवेश किया।

'अज्ञेय' बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। कहानी, उपन्यास, कविता, निबन्ध आदि सभी उन्होंने लिखे हैं। सम्पादन क्षेत्र में भी यश प्राप्त किया है और यात्रा वृतान्त भी सुन्दर लिखे हैं। उन की रचनाओं में उन की विशद अध्ययन और गहरा चिन्तन प्रकट होता है, सूक्ष्म मनोबज्ञानिक विश्लेषण उनकी कहानियों की विशेषता है। विधान का कौशल और वैविध्य उल्लेखनीय है। शैली परिमार्जित और भाषा ओजमयी होती है, स्थिति के अनुरूप कभी संस्कृत-गर्भित और कभी सीधी-सादी बोल-चाल की।

'अज्ञेय'

रोज़—'

दोपहर में उस सूने आँगन में पैर रखते ही मुझ ऐसा जान पड़ा, मानों उस पर किसी शाप की छाया मंडरा रही हो, उस के वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य, किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना-सा फैल रहा था...

मेरी आहट सुनते ही मालती बाहर निकली। मुझे देख कर, पहचान कर उस की मुरझायी हुई मुख मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जागी सी और फिर पूर्वत् हो गयी। उसने कहा, "आ जाओ।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

भीतर पहुंच कर मैंने पूछा, "वे यहाँ नहीं हैं?"

"अभी आये नहीं, दफ्तर में हैं। थोड़ी देर में आ जायेंगे। कोई डेढ़ दो बजे आया करते हैं।"

"कब के गये हुए हैं?"

"सबेरे उठते ही चले जाते हैं..."

मैं 'हूं' कह कर पछने को हुआ, "और तुम इतनी देर क्या करती हो?" पर फिर सोचा आते ही एकाएक प्रश्न ठीक नहीं है। मैं कमरे के चारों ओर देखने लगा।

मालती एक पंखा उठा लायी, और मुझे हवा करने लगी।

मैंने आपत्ति करते हुऐ कहा, "नही, मुझे नहीं चाहिए।" पर वह नहीं मानी बोली, "वाह! चाहिए कैसे नहीं? इतनी धूप में तो आये हो। यहाँ तो..."

मैंने कहा, "अच्छा लाओ, मुझे दे दो।"

वह शायद 'ना' करने वाली थी, पर तभी दूसरे कमरे से शिशु के रोने की आवाज़ सुन कर उसने चुपचाप पंखा मुझे दे दिया और घुटनों पर हाथ टेक कर एक थकी हुई 'हुंह' कर के उठी और भीतर चली गयी।

मैं उन के जाते हुए दुबले शरीर को देख कर सोचता रहा—यह क्या है...यह कैसी छाया-सी इस घर पर छाई हुई है...

मालती मेरी दूर की रिश्ते की बहन है, किन्तु उसे सखी कहना ही उचित है, क्योंकि हमारा परस्पर सम्बन्ध सख्य का ही रहा है, हम बचपन से इकट्ठा खेले हैं, इकट्ठे लड़े और पिटे हैं, और हमारी पढ़ाई भी बहुत-सी इकट्ठे ही हुई थी, और हमारे व्यवहार में सदा सख्य की स्वेच्छा और स्वच्छन्दता रही है, वह कभी भ्रातृत्व के, या बड़े-छोटेपन के बन्धनों में नहीं घिरा...

मैं आज कोई चार वर्ष बाद उसे देखने आया हूँ। जब मैंने उसे इस से पूर्व देखा था, तब वह लड़की ही थी, अब वह विवाहित है, एक बच्चे की माँ भी है। इस से कोई परिवर्तन उस में आया होगा और यदि आया होगा तो क्या, यह मैंने अभी तक सोचा नहीं था, किन्तु अब उसकी पीठ की ओर देखता हुआ मैं सोच रहा था, यह कैसी छाया इस घर पर छायी हुई है...और विशेषतया मालती पर...

मालती बच्चे को लेकर लौट आयी और फिर मुझ से कुछ दूर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गयी, मैंने अपनी कुर्सी घुमा

कर कुछ उस की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "इस का नाम क्या है ?"

मालती ने बच्चे की ओर देखते हुए उत्तर दिया, "नाम तो कोई निश्चित नहीं किया, वैसे टिटी, कहते हैं।"

मने उसे बुलाया, "टिटी, टिटी, आजा," पर वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर देखता हुआ अपनी माँ से चिपट गया, और रुआँसा-सा होकर कहने लगा, "उहुं-उहुं-उहुं-ऊँ..."

मालती ने फिर उस की ओर एक नज़र देखा, और फिर बाहर आँगन की ओर देखने लगी...

काफी देर मौन रहा। थोड़ी देर तक तो वह मौन आकस्मिक ही था, जिस में मैं प्रतीक्षा म था कि मालती कुछ पूछे, किन्तु उस के बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात ही नहीं की,...यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसा हूँ, कैसे आया हूँ चुप बैठी है, क्या विवाह के दो वर्ष में ही वह बीते दिन भूल गयी ? या अब मुझे दूर—इस विशेष अन्तर पर—रखना चाहती है ? क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छन्दता अब तो नहीं हो सकती...पर फिर भी, ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए...,

मैंने कुछ खिन्न-सा होकर दूसरी ओर देखते हुए कहा, "जान पड़ता है, तुम्हें मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई—"

उसने एकाएक चौंक कर कहा, "हूँ ?"

यह 'हूँ" प्रश्न-सूचक था, किन्तु इस लिए नही कि मालती ने मेरी बात सुनी नही थी, केवल विस्मय के कारण। इस लिए मैंने अपनी बात दुहराई नहीं, चुप बैठ रहा। मालती कुछ बोली ही नहीं, तब थोड़ी देर बाद मैंने उस की ओर देखा। वह एकटक मेरी ओर देख रही थी, किन्तु मेरे उधर सन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं। फिर भी मैंने देखा, उन आँखों में

कुछ विचित्र-सा भाव था, मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमण्डल को पुनः जगा कर गतिमान करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार-तन्तु को पुनरुज्जीवित करने की, और चेष्टा में सफल न हो रहा हो...वैसे जैसे बहुत देर के प्रयोग में न लाये हुए अंग को व्यक्ति एकाएक उठाने लगे और पाये कि वह उठता ही नहीं है, चिर-विस्मृति में मानो मर गया है, उतने क्षीण बल से (यद्यपि वह सारा प्राप्य बल है) उठ नही सकता। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो किसी जीवित प्राणी के गले मे किसी मृत जन्तु का तौक डाल दिया गया हो, वह उसे उतार कर फेंकने चाहे पर न उतार पाये...

तभी किसी ने किवाड़ खटखटाये, मैंने मालती की ओर देखा, पर वह हिली नहीं। जब किवाड़ दूसरी बार खटखटाये गये तब वह शिशु को अलग करके उठी और किवाड़ खोलने गयी।

वह, यानी मायती के पति आये, मैंने उन्हें पहली बार देखा था, यद्यपि फोटो से उन्हें पहचानता था। परिचय हुआ। मालती खाना तैयार करके आँगन में चली गयी, और हम दोनों भीतर बैठ कर बात-चीत करने लगे, उनकी नौकरी के बारे में, उनके जीवन के बारे में, उस स्थान के बारे में, और ऐसे अन्य विषयों के बारे में जो पहले परिचय पर उठा करते हैं, एक तरह का स्वरक्षात्मक कवच बन कर...

मालती के पति का नाम है महेश्वर। वह एक पहाड़ी गाँव में सरकारी डिस्पेन्सरी के डाक्टर हैं, उसी हैसियत से इन क्वार्टरों में रहते हैं। प्रातःकाल सात बजे डिस्पेन्सरी चले जाते हैं और डेढ़ या दो बजे लौटते हैं, उसके बाद दोपहर भर छुट्टी रहती है, केवल शाम को एक-दो घण्टे फिर चक्कर लगाने के लिए

जाते हैं, डिस्पेन्सरी के साथ के छोटे से अस्पताल में पड़े हुए रोगियों को देखने और अन्य जरूरी हिदायतें कर...उन का जीवन भी एक निर्दिष्ट ढर्रे पर चलता है, नित्य वही काम, उसी प्रकार के मरीज़, वहीं हिदायतें, वहीं नुस्खे, वही दवाइयाँ, वह स्वयं उकताये हुए हैं, और इस लिए और साथ ही इस भयंकर गर्मी के कारण वह अपने फुरसत के समय में भी सुस्त ही रहते हैं...

मालती हम दोनों के लिए खाना ले आयी। मैंने पूछा, "तुम नहीं खाओगी ? या खा चुकीं ?"

महेश्वर बोले, कुछ हँस कर, "वह पीछे खाया करती है...

पति ढाई बजे खाना खाने आते हैं, इस लिए पत्नी तीन बजे तक भूखी बैठी रहेगी !

महेश्वर खाना आरम्भ करते हुए मेरी ओर देख कर बोले, "आप को तो खाने का मज़ा क्या ही आयेगा; ऐसे बेवक्त खा रहे हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "वाह ! देर से खाने पर तो और भी अच्छा लगता है, भूख बढ़ी हुई होती है, पर शायद मालती बहन को कष्ट होगा।"

मालती टोक कर बोली, "उँहु, मेरे लिए तो यह नयी बात नहीं है...रोज़ ही ऐसा होता है...

मालती बच्चे को गोद में लिए हुए थी। बच्चा रो रहा था, पर उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था।

मैंने कहा, "यह रोता क्यों है ?"

मालती बोली, "हो ही गया है चिड़चिड़ा-सा, हमेशा ही ऐसा रहता है।" फिर बच्चे को डाँट कर कहा, "चुप कर !" जिस से वह और भी रोने लगा। मालती ने भूमि पर बैठा दिया और

बोली..."अच्छा ले, रो ले।" और रोटी। आंगन की आर चली गयी।

जब हमने भोजन समाप्त किया तब तीन बजने वाले थें; महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज जल्दी अस्पताल जाना है, वहाँ एक-दो चिन्ता-जनक केस आये हुए हैं, जिन का आपरेशन करना पड़ेगा ...दो की शायद टाँग काटनी पड़ें, गैंग्रीन हो गया है...थोड़ी ही देर में वह चले गये। मालती किवाड़ बन्द कर आयी और मेरे पास बैठने ही लगी थी कि मैंने कहा, "अब खाना तों खा लो, मैं उतनी देर टिटी से खेलता हूँ।"

वह बोली, "खा लूँगी, मेरे खाने की कौन बात है," किन्तु चली गयो। मैं टिटी को हाथ में लेकर झुलाने लगा, जिस से वह कुछ देर के लिए शान्त हो गया।

दूर...शायद अस्पताल में ही, तीन खड़के। एकाएक मैं चौंका, मैंने सुना, मालती वही आँगन में बैठी अपने-आप ही एक लम्बी-सी थकी हुई साँस के साथ कह रही है, "तीन बज गये..." मानो बड़ी तपस्या के बाद कोई कार्य सम्पन्न हो गया हो...

थोड़ी ही देर में मालती फिर आ गयी, मैंने पूछा, "तुम्हारे लिए कुछ बचा भी था? सब कुछ तो..."

"बहुत था।"

"हाँ बहुत था, भाजी तो सारी मैं ही खा गया था, वहाँ बचा कुछ होगा नहीं, यों ही रौब तो न जमाओ कि बहुत था।" मैंने हँस कर कहा।

मालती मानो किसी और विषय की बात कहती हुई बोली, "यहाँ सब्जी-बब्जी तो कुछ होती नहीं, कोई आता-जाता है, तो नीचे से मँगा लेते हैं, मुझे आये पन्द्रह दिन हुए हैं, जो सब्जी साथ लाये थे वही अभी बरती जा रही है...।"

मैंने पूछा, "नौकर कोई नहीं है ?"

"कोई ठीक मिला नही, शायद दो-एक दिन में हो जाय।"

"बर्तन भी तो तुम्हीं माँजती हो ?"

"और कौन ?" कह कर मालती क्षण-भर आँगन में जा कर लौट आयी।

"मैंने पूछा, "कहाँ गयी थीं ?"

"आज पानी ही नहीं है, बर्तन कैसे मँजेंगे ?"

"क्यों, पानी को क्या हुआ ?"

"रोज ही होता है...कभी वक्त पर तो आता नही, आज शाम को सात बजे आयेगा, तब बर्तन मँजेंगे।"

"चलो तुम्हें सात बजे तक तो छुट्टी हुई," कहते हुए मैं मन ही मन सोचने लगा, "अब इसे रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ेगा, छुट्टी क्या खाक हुई ?'

यही उसने कहा। मेरे पास कोई उत्तर नहीं था; पर मेरी सहायता टिटी ने की, एकाएक फिर रोने लगा, और मालती के पास जाने की चेष्टा करने लगा। मैंने उसे दे दिया।

थोड़ा देर फिर मौन रहा, मैंने जेब से अपनी नोटबुक निकाली और पिछले दिनों के लिखे हुए नोट देखने लगा, तब मालती को याद आया कि उसने मेरे आने का कारण तो पूछा नहीं; और बोली, "यहाँ आये कैसे ?"

मैंने कहा ही तो, "अच्छा अब याद आया ? तुम से मिलने आया था, और क्या करने ?"

"तो दो-एक दिन रहोगे न ?"

"नही, कल चला जाऊंगा, जरूरी जाना है।"

मालती कुछ नहीं बोली कुछ खिन्न-सी हो गयी। मैं फिर नोटबुक की तरफ देखने लगा।

थोड़ी देर बाद मुझे भी ध्यान हुआ, मैं आया तो हूँ मालती

से मिलने किन्तु यहाँ वह बात करने को बैठी है और मैं पढ़ रहा हूँ, पर बात भी क्या की जाय ? मुझे ऐसा लग रहा था कि इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रह कर भी मानो मुझे भी वश कर रही है, मैं भी वैसा ही नीरस निर्जीव-सा हो रहा हूँ, जैसे—हाँ, जैसे यह घर, जैसे मालती...

मैंने पूछा, "तुम कुछ पढ़ती-लिखती नहीं ?" मैं चारों ओर देखने लगा कि कहीं किताबें दीख पड़ें।

"यहाँ।" कह कर मालती थोड़ा-सा हँस दी। वह हँसी कह रही थी, 'यहाँ पढ़ने को है क्या ?'

मैंने कहा, "अच्छा, मैं वापस जा कर ज़रूर कुछ पुस्तकें भेजूँगा..." और वार्तालाप फिर समाप्त हो गया...

थोड़ी देर बाद मालती ने फिर पूछा, "आये कैसे हो, लारी में ?"

"पैदल।"

"इतनी दूर ? बड़ी हिम्मत की।"

"आखिर तुम से मिलने आया हूँ।"

"ऐसे ही आये हो ?"

"नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान ले कर। मैंने सोचा, बिस्तरा ले ही चलूँ।"

"अच्छा किया, यहाँ तो बस..." कह कर मालती चुप रह गयी, फिर बोली, "तब तुम थके होगे, लेट जाओ।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं थका।"

"रहने भी दो, थके नहीं, भला थके हैं ?"

"और तुम क्या करोगी ?"

"मैं बर्तन माँज रखती हूँ, पानी आयेगा तो धुल जायेंगे।" मैंने कहा, "वाह !" क्यों कि और कोई बात मुझे सूझी नहीं...

थोड़ी देर में मालती उठी और चली गयी, टिटी को साथ ले कर। तब मैं भी लेट गया और छत की ओर देखने लगा... मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुई बर्तनों के घिसने की खन-खन ध्वनि मिल कर एक विचित्र एक स्वर उत्पन्न करने लगी, जिस के कारण मेरे अंग धीरे-धीरे ढीले पड़ने लगे, मैं ऊँघने लगा...

एकाएक वह एकस्वर टूट गया—मौन हो गया। इस से मेरी निन्द्रा भी टूटी, मैं उस मौन में सुनने लगा...

चार खड़क रहे थे इसी का पहला घंटा सुन कर मालती रुक गयी थी...

यही तीन बजे वाली बात मैंने फिर देखी, अब की बार और भी उग्र रूप में। मैंने सुना, मालती एक बिल्कुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यन्त्रवत्—वह भी थके हुए यन्त्र की भाँति स्वर में कह रही है, "चार बज गये..." मानो इस अनैच्छिक समय गिनने-गिनने में ही उसका मशीन-तुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही, जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यन्त्रवत् फासला नापता जाता है, और यन्त्रवत् विश्रान्त स्वर में कहता है: (किस से!) कि मैंने अपने अमित शून्यपथ का इतना अंश तय कर लिया...

न जाने कब, कैसे मुझे नींद आ गयी...

तब छः कब के बज चुके थे, जब किसी के आने की आहट से मेरी नींद खुली, और मैंने देखा कि महेश्वर लौट आये हैं, और उन के साथ ही बिस्तर लिये हुए मेरा कुली। मैं मुँह धोने को पानी माँगने को ही था कि मुझे याद आया, पानी नहीं होगा। मैंने हाथों से मुँह पोंछते-पोंछते महेश्वर से पूछा, "आपने बड़ी देर की?"

उन्होंने किंचित् ग्लानि-भरे स्वर में कहा, "हाँ, आज वह

ग्रैंग्रीन का आपरेशन करना ही पड़ा, एक कर आया हूँ, दूसरे को एम्बुलेन्स में बड़े अस्पताल भिजवा दिया है।"

मैंने पूछा, "ग्रैंग्रीन कैसे हो गया ?"

"एक काँटा चुभा था, उसी से हो गया, बड़े लापरवाह लोग होते हैं यहाँ के..."

मैंने पूछा, "यहाँ आप को केस अच्छे मिल जाते हैं ? आय के लिहाज़ से नहीं, डाक्टरी अभ्यास के लिए ?"

बोले, "हाँ, मिल ही जाते हैं, यहाँ ग्रैंग्रीन, हर दूसरे-चौथे दिन एक केस आ जाता है, नीचे बड़े अस्पतालों में भी..."

मालती आँगन से ही सुन रही थी, अब आ गयी, बोली, "हाँ, केस बनाते देर क्या लगती है ? काँटा चुभा था, इस पर टाँग काटनी पड़े, यह भी कोई डाक्टरी है ? हर दूसरे दिन किसी की टाँग, किसी की बाँह काट आते हैं, इसी का नाम है अच्छा अभ्यास !"

महेश्वर हँसे, बोले, "न काटें तो उस की जान गवायें ?

"हाँ पहले तो दुनियाँ में काँटे ही नहीं होते होंगे ? आज तक तो सुना नहीं था कि काँटो के चुभने से मर जाते हों..."

महेश्वर ने उत्तर नहीं दिया, मुस्करा दिये, मालती मेरी ओर देख कर बोली, "ऐसे ही होते हैं डाक्टर, सरकारी अस्पताल है न, क्या परवाह है। मैं तो रोज़ ही ऐसी बातें सुनती हूँ। अब कोई मर-मुर जाय तो ख्याल ही नहीं होता। पहले तो रात-रात-भर नींद नहीं आया करती थी।"

तभी आँगन में खुले हुए नल ने कहा—टिप, टिप, टिप, टिप-टिप-टिप...

मालती ने कहा, "पानी!" और उठ कर चली गयी। खन-खनाहट से हमने जाना, बर्तन धोये जाने लगे हैं...

टिटी महेश्वर की टाँगों के सहारे खड़ा मेरी ओर देख रहा

था, अब एकाएक उन्हें छोड़कर मालती की ओर खिसकता हुआ चला। महेश्वर ने कहा, "उधर मत जा।" और उसे गोद में उठा लिया, वह मचलने और छिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा।

महेश्वर बोले, "अब रो-रो कर सो जायगा, तभी घर में चैन होगी।"

मैंने पूछा, "आप लोग भीतर ही सोते हैं? गर्मी तो बहुत होती है?"

"होने को तो मच्छर भी बहुत होते हैं, पर ये लोहे के पलंग उठा कर बाहर कौन ले जाये? अब के नीचे जायेंगे तो चारपाइयाँ ले जायेंगे।" फिर कुछ रुक कर बोले, "आज तो बाहर ही सोयेंगे। आप के आने का इतना लाभ ही होगा।"

टिटी अभी तक रोता ही जा रहा था। महेश्वर ने उसे एक पलंग पर बिठा दिया, और पलंग बाहर खींचने लगे। मैंने कहा, "मैं मदद करता हूँ, "और दूसरी ओर से पलंग उठा कर निकलवा दिये।

अब हम तीनों—महेश्वर, टिटी और मैं, दो पलंगों पर बैठ गये और वार्तालाप के लिए उपयुक्त विषय न पाकर उस कमी को छिपाने के लिए टिटी से खेलने लगे, बाहर आ कर वह कुछ चुप हो गया था, किन्तु बीच-बीच में जैसे एकाएक कोई भूला हुआ कर्तव्य याद कर के रो उठता था और फिर एकदम चुप हो जाता था...और कभी-कभी हम हँस पड़ते थे, या महेश्वर उस के बारे में कुछ बात कह देते थे...

मालती बर्तन धो चुकी थी। जब वह उन्हें ले कर आँगन के एक ओर रसोई के छप्पर की ओर चली, तब महेश्वर ने कहा, "थोड़े से आम लाया हूँ, वह भी धो लेना।"

"कहाँ हैं?"

"अँगीठी पर रखे हैं, कागज में लिपटे हुए।"

मालती ने भीतर जाकर आम उठाये और अपने आँचल में डाल लिये। जिस कागज में वे लिपटे हुए थे वह कीसी पुराने अखबार का टुकड़ा था। मालती चलती चलती सन्ध्या के उस क्षीण प्रकाश में उसी को पढ़ती जा रही थी...वह नल के पास जाकर खड़ी उसे पढ़ती रही, जब दोनों ओर पढ़ चुकी, तब एक लम्बी साँस ले कर उसे फेंक कर आम धोने लगी।

मुझे एकाएक याद आया...बहुत दिनों की बात थी...जब हम अभी स्कूल में भर्ती हुए ही थे। जब हमारा सब से बड़ा सुख, सब से बड़ी विजय थी हाज़िरी हो चुकने के बाद चोरी से क्लास से निकल भागना और स्कूल से कुछ दूरी पर आम के बगीचे में पेड़ों पर चढ़ कर कच्ची अमियाँ तोड़-तोड़ खाना। मुझे याद आया—कभी जब मैं भाग आता और मालती नहीं आ पाती थी तब मैं भी खिन्न मन लौट आया करता था...

मालती कुछ नहीं पढ़ती थी, उस के माता-पिता तंग थे, एक दिन उस के पिता ने उसे एक पुस्तक ला कर दी और कहा कि इस के बीस पेज रोज़ पढ़ा करो, हफ्ते भर बाद मैं देखूँगा कि इसे समाप्त कर चुकी हो, नहीं तो मार-मार कर चमड़ी उधेड़ दूँगा। मालती ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी? वह नित्य ही उसके दस पन्ने, बीस पेज, फाड़ कर फेंक देती, अपने खेल में किसी भाँति फर्क न पड़ने देती। जब आठवें दिन उस के पिता ने पूछा, "किताब समाप्त कर ली?" तो उत्तर दिया "हाँ, कर ली।" पिता ने कहा, "लाओ, मैं प्रश्न पूछूँगा।" तो चुप खड़ी रही। पिता ने फिर कहा, तो उद्धत स्वर में बोला, "किताब मैंने फाड़ कर फेंक दी है, मैं नहीं पढ़ूँगी।"

उस के बाद वह बहुत पिटी, पर वह अलग बात है...इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्धत और चंचल मालती

आज कितनी सीधी हो गयी है, कितनी शान्त, और एक अख़बार के टुकड़े को तरसती है...यह क्या है, यह...

तभी महेश्वर ने पूछा, "रोटी कब बनेगी ?"

"बस अभी बनाती हूँ।"

पर अब की बार जब मालती रसोई की ओर चली, तब टिटी की कर्तव्य भावना बहुत विस्तीर्ण हो गयी, वह मालती की ओर हाथ बढ़ा कर रोने लगा और नहीं माना. मालती उसे भी गोद में ले कर चली गयी. रसोई में बैठ कर एक हाथ से उसे थपकने और दूसरे से कई एक छोटे-छोटे डिब्बे उठा कर अपने सामने रखने लगी।

और हम दोनों चुपचाप रात्रि की, और भोजन की, और एक दूसरे के कुछ कहने की, और न जाने किस किस न्यूनता की पूर्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

हम भोजन कर चुके थे और बिस्तरों पर लेट गये थे और टिटी सो गया था। मालती उसे पलंग के एक ओर मोमजामा बिछा कर उस पर लिटा गयी थी। वह सो गया था, पर नींद में कभी-कभी चौंक उठता था। एक बार तो उठ कर बैठ भी गया था, तुरन्त ही लेट गया।

मैंने महेश्वर से पूछा "आप तो थके होंगे, सो जाइये।

वह बोले, "थके तो आप अधिक होंगे...अठारह मील पैदल चल कर आये हैं। किन्तु उनके स्वर ने मानो जोड़ दिया, "थका तो मैं भी हूँ।"

मैं चुप रहा, थोड़ी देर में किसी अपर संज्ञा ने मुझे बताया, वह ऊँघ रहे हैं।

तब लगभग साढ़े दस बजे थे, मालती भोजन कर रही थी।

मैं थोड़ी देर मालती की ओर देखता रहा, वह किसी विचार में—यद्यपि बहुत गहरे विचार में नहीं लीन हुई धीरे-धीरे

खाना खा रही थी, फिर मैं इधर-उधर खिसक कर पलंग पर आराम से होकर आकाश की ओर देखने लगा।

पूर्णिमा थी, आकाश अनभ्र था।

मैंने देखा, उस सरकारी क्वार्टर की दिन में अत्यन्त शुष्क और नीरस लगने वाली स्लेट की छत भी चाँदनी में चमक रही है, अत्यन्त शीतलता और स्निग्धता से छलक रही है, मानो चन्द्रिका उन पर से बहती हुई आ रही हो, झर रही हो...

मैंने देखा, पवन में चीड़ के वृक्ष...गर्मी से सूख कर मटमैले हुए चीड़ के वृक्ष...धीरे-धीरे गा रहे हैं...कोई राग जो कोमल है, किन्तु करुण नहीं, अशान्तिमय है, किन्तु उद्वेगमय नहीं...

मैंने देखा, प्रकाश से धुंधले नील आकाश के पट पर जो चमगादड़ नीरव उड़ान से चक्कर काट रहे हैं, वे भी सुन्दर दीखते हैं...

मैंने देखा...दिन भर की तपन, अशान्ति, थकान, दाह, पहाड़ों में से भाप-से उठ कर वातावरण में खोये जा रहे हैं जिसे ग्रहण करने के लिए पर्वत-शिशुओं ने अपनी चीड़-वृक्ष रूपी भुजाएँ आकाश की ओर बढ़ा रखी हैं...

पर यह सब मैंने ही देखा, अकेले मैंने...महेश्वर ऊँघ रहे थे और मालती उस समय भोजन से निवृत्त हो कर दही जमाने के लिए मिट्टी का बर्तन गर्म पानी से धो रही थी, और कह रही थी..."अभी छुट्टी हुई जाती है," और मेरे कहने पर कि ग्यारह बजने वाले हैं," धीरे से सिर हिला कर जता रही थी कि रोज़ ही इतने बज जाते हैं...मालती ने वह सबकुछ नहीं देखा, मालती का जीवन अपनी रोज़ की नियत गति से बहा जा रहा था और एक चन्द्रमा की चन्द्रिका के लिए, एक संसार के सौन्दर्य के लिए, रुकने को तैयार नहीं था...

चांदनी में शिशु कैसा लगता है, इस अलस जिज्ञासा से मैं ने टिटी की ओर देखा, और वह एकाएक मानो किसी शैशवोचित वामता से उठा और खिसक कर पलंग से नीचे गिर पड़ा और चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। महेश्वर ने चौंक कर कहा, "क्या हुआ ?" मैं झपट कर उसे उठाने दौड़ा, मालती रसोई से बाहर निकल आयी, मैंने उस 'खट्' शब्द को याद कर के धीरे से करुण भरे स्वर में कहा, "चोट बहुत लग गयी बिचारे के।"

यह सब मानो एक ही क्षण में, एक ही क्रिया की गति में हो गया।

मालती ने रोते हुए शिशु को मुझ से लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, "इस के चोटें लगती ही रहती हैं, रोज ही गिर पड़ता है।"

एक छोटे क्षण-भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया, फिर एकाएक मेरे मन ने, मेरे समूचे अस्तित्व ने विद्रोह के स्वर में कहा—कहा मेरे मन ने, भीतर ही, बाहर एक शब्द भी नहीं निकला—"माँ, युवती माँ, यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है, जो तुम अपने एकमात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो...और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है।"

और, तब एकाएक मैंने जाना कि वह भावना मिथ्या नहीं है, मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुम्ब में कोई गहरी भयंकर छाया घर कर गई है, उन के जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गयी है, उस का इतना अभिन्न अंग हो गयी है कि वे इसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे हुए चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं, मैंने उस छाया को देख भी लिया...

इतनी देर में, पूर्ववत् शान्ति हो गयी थी। महेश्वर फिर लेट कर ऊंघ रहे थे। टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपट

कर चुप हो गया था, यद्यपि कभी एक–आध सिसकी उसके छोटे से शरीर को हिला देती थी। मैं भी अनुभव करने लगा था कि बिस्तर अच्छा-सा लग रहा है। मालती चुप-चाप ऊपर आकाश में देख रही थी, किन्तु क्या चन्द्रिका को या तारों को ?

तभी ग्यारह का घंटा बजा, मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठा कर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी, और घंटा ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज़ में उसने कहा, "ग्यारह बज गये।

भगवतीचरण वर्मा

[जन्म सन् १९०३]

उन्नाव जिले में शफीपुर में जन्म हुआ, आरम्भिक शिक्षा कानपुर में, फिर प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० और कानून की परीक्षाएँ पास की।

वर्माजी की पहली कहानी सन् १९२१ में छपी थी ; पर उस समय उन का ध्यान कविता की ओर ही अधिक था और कवि रूप में ही उन्होंने प्रसिद्धि पायी। अनन्तर उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया, और फिर कहानी की ओर दुबारा प्रवृति हुई। कहानियाँ अधिक नहीं लिखी हैं, पर जितनी हैं उन्हें कहानी शिल्प का अच्छा उदाहरण माना जा सकता है। साधारणतया हल्की और प्रायः विनोदकारी वस्तु को ले कर नाटकीय कथोपकथन प्रभावोत्पादक ढंग से वह आगे बढ़ते हैं, कहानिओं में अप्रत्याशित या विस्मयकारी तत्त्व रहते हैं। कभी वस्तु द्वारा, कभी उक्ति द्वारा, कभी कहानी की निष्पत्ति द्वारा पाठक को चौंकाना वर्मा जी को पसन्द है। भाषा साफ सुथरी, सव्यंग्य और मुहावरेदार होती है और वाक्य रचना ऐसी होती है कि थोड़े से वाचिक या आंगिक अभिनय के साथ ही उसका पूरा प्रभाव व्यक्त हो सकता है।

भगवतीचरण वर्मा

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आयी थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामूकी बहू घर में सब कुछ। सास जी ने माला ली और पूजा पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार घर खुला है, तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गयी। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गयी। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँड़ी में घी रखते-रखते ऊँघ गयी और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढक कर मिसरानी को जिन्स देने गयी और दूध नदारद। अगर बात यहीं तक रह जाती, तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गयी थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी

से भरी कटोरी पहुंची और रामू जब आये तब कटोरी साफ़ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आयी और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया बालाई गायब।

रामू की बहू नें तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गयी, और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उस में दूध, बालाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलायी। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी, पर अब वह साथ लग गयी, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ, और पति देव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू नें रामू के लिए खीर बनायी। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में ओटाये गये. सोने का वर्क़ चिपकाया गया और खीर से भर कर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुंच सके। रामू की बहू इस के बाद पान लगाने में लग गयी।

उधर बिल्ली कमरे में आयी, ताक के नीचे खड़े होकर उस ने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा—माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगा कर रामू की बहू सास जी को पान देने चली गयी और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फ़र्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुंची, सास के सामने पान फेंक कर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा

टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डट कर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बांस न बजे बाँसुरी, रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आयी, किस दांव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इस के बाद मुसकराती हुई वह उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रख कर चली गयी। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगा कर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लायी, बस एकदम उलट गयी।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़ कर, मिसरानी रसोई छोड़ कर और सास पूजा छोड़ कर, घटनास्थल पर उपस्थित हो गयीं। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली, "अरे बिल्ली तो मर गयी, माँ जी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गयी यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोली, "माँ जी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है, हम तो रसोई न बनावेंगी जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सास जी बोलीं, "हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय, तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला।"

महरी ने कहा, "फिर क्या हो, कहो तो पंडित जी को बुलाय लाई।"

सास की जान में जान आयी। "अरे हाँ जल्दी दौड़ के पंडित जी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गयी। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ़ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकायें बैठी।

पंडित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वह पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वह उठ पड़े...पंडिताइन से मुस्कराते हुए बोले, "भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पंठित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से से आदमी थे। लम्बाई चार फुट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराक वाले पंडितों को ढूँढ़ा जाता था, तो पंडित परमसुख जी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पंडित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बठी...सास जी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पंडित परमसुख। बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ न कहा, "पंडित जी, बिल्ली का हत्या करने से कौन नरक मिलता है?"

पंडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा, "बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बताया जा सकता, वह महूरत

भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह," मिसरानी जी ने कहा।

पंडित परमसुख ने पत्रे के पन्ने पलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलायीं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सुकड़ी और स्वर गम्भीर हो गया..."हरे कृष्ण। हरे कृष्ण। बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म महूर्त्त में बिल्ली की हत्या। घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है। रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ..."

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गये। "तो फिर पंडित जी, अब क्या होगा आप ही बतलाय।"

पंडित परमसुख मुसकराये। "रामू की माँ, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है, सो प्रायश्चित से सब-कुछ ठीक हो जायगा।"

रामू की माँ ने कहा "पंडित जी, उसी लिए तो आप को बुलवाया था, अब आगे बतलाओं कि क्या किया जाया"

"किया क्या जाय, यही एक सोने की बिल्ली बनवा कर बहू से दान करवा दी जाय। जब तक बिल्ली न दे दी जायगी, तब तक तो घर अपवित्र रहेगा। बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय!"

छन्नू की दादी: "हाँ और क्या, पंडित जी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।"

रामू की माँ ने कहा, "तो पंडित जी कितने तोले की बिल्ली बनवायी जाय?"

पंडित परमसुख मुसकराये। अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "बिल्ली कितने तोले की बनवायी जाय? अरे रामू

की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्जी के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवायी जाय; लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही; सो रामू की माँ, बिल्ली के तोल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम क्या होगी। हाँ कम-से-कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा।"

रामू की माँ ने आँखें फाड़ कर पंडित परमसुख को देखा। "अरे बाप रे, इक्कीस तोला सोना। पंडितजी, यह तो बहुत है, तोला-भर की बिल्ली से काम न निकलेगा?"

पंडित परमसुख हँस पड़े। "रामू की माँ। एक तोला सोने की बिल्ली। अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है, इस में इतना लोभ ठीक नहीं।"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इस के बाद पूजा-पाठ की बात आयी। पंडित परमसुख ने कहा, "उस में क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं, रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा?"

"अरे कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन–भर नमक भी लगेगा। बस, इतने से काम चल जायगा।"

"अरे बाप रे इतना सामान। पंडित जी इस में तो सौ डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जायगा..." रामू की माँ ने रुआसी हो कर कहा।

"फिर इस से कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ। खर्च तो देखते वक्त पहले बहू के पाप को तो देख लो। यह तो प्रायश्चित है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है...और जैसी जिस की मरजादा प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, अरे सौ डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।"

पंडित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा, "पंडित जी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा, "और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं—दान-पुन्न में किफ़ायत ठीक नहीं।"

मिसरानी ने कहा, "और फिर माँ जी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।"

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा! सभी पंच पंडित जी के साथ। पंडित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा, "रामू की माँ! एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ़ तुम्हारे ज़िम्मे थोड़ा-सा खर्चा है सो उस से मुँह न मोड़ो।"

एक ठंडी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा, "अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा।"

पंडित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़ कर बोले, रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है—अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो, मैं चला—"इतना कह कर पंडित जी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पंडित जी रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न!" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पंडित जी के पैर पकड़े। और पंडित जी ने अब जम कर आसन जमाया।

"और क्या हो ?"

इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों वखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन्न करवाना पड़ेगा।" कुछ रुक कर पंडित परमसुख ने कहा, "सो इस की चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा।"

"यह तो पंडित जी ठीक कहते हैं, पंडित जी की तोंद तो देखो !" मिसरानी ने मुस्कराते हुए पंडित जी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उस की बिल्ली बनवा लाऊँ ...दो घंटे में मैं बनवा कर लौटूँगा, तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो पूजा के लिए—"

पंडित जी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आयी, और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबड़ा कर कहा, "अरी क्या हुआ री ?"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा, "माँ जी बिल्ली तो उठ कर भाग गयी !"

यशपाल

[जन्म सन् १६०४]

काँगड़े के पहाड़ी प्रदेश में जन्म लिया, और प्रारम्भिक शिक्षा कांगड़ी गुरुकुल में पायी। अनन्तर लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित नेशनल यूनिवर्सिटी लाहौर से बी० ए० पास किया। आतंकवादियों के दल में सम्मिलित हो कर कुछ वर्ष छिपते रहे, कई वर्ष जेल में काटे। पहले गद्यकाव्य की ओर प्रवृत्ति थी, जेल से आने के बाद कहानी और उपन्यास-लेखक के रूप में प्रकाश में आये। निबन्धों में और अपने पत्र 'विप्लव' में मार्क्सवादी विचारों का प्रदिपादन करते रहे।

यशपाल की कहानियों में युग के संघर्षशील मानव का चित्रण मिलता है। यथार्थवादी परम्परा के वह प्रमुख लेखक हैं, पर कभी-कभी उन का चित्रण यथार्थवदी न हो कर प्रकृतवादी हो जाता है, और तब उनके वर्णन भोंडे और सस्ती उत्तेजना देने वाले हो जाते हैं। पर साधारणतया रूढ़ि की पति विद्रोह की तीव्रता, मध्यवर्गीय सभ्यता के जीर्ण व्यवहारों के प्रति तीखे व्यंग्य और सामाजिक सम्बन्धों के निर्मम बौद्धिक विशलेषण के स्वर उनकी रचनाओं में इतने मुखर रहते हैं कि ऐसा भोंडापन भी दब जाता है। उच्च या मध्य वर्ग के व्यक्तियों के, और कभी समूचे समाज के बड़े विद्रूप चित्र वह प्रस्तुत करते हैं। राजनैतिक मत-प्रतिपादन के अनुरूप उनकी भाषा सरल और ज़ोरदार होती है, पर गाम्भीर्य की उस में कमी होती हैं। कथाशिल्प की दृष्टि से यशपाल जी की कहानियां बहुत सफल होती है; और आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहानी का पूर्ण परिपाक उन में मिलता है।

'यशपाल'

एक राज़

: १ :

मेरी बहुत पुरानी साध पूरी हुई जब मुझे देहरादून की बदली का आर्डर मिला। देहरादून के प्रशान्त उपवन के प्रति मेरे मन में बहुत पुरानी अनुरक्ति है। पहाड़ियोंसे घिरी उस उपत्यका में जा माँ की गोद में आँख मूँद कर सो जाने का सा सुख मिलता है। वृक्षाच्छादित, सूनी और स्वच्छ सड़कें, परेड का विस्तृत मैदान और चारों ओर हरियाली छायी पहाड़ियों की उमड़ती हुई लहरें——यह सब चित्र के समान सुन्दर जान पड़ता है। रात में मंसूरी की पहाड़ी पर छिटकी बिजली की रोशनी.... मानो सूर्य की रानी वहाँ दिन में क्रीड़ारत हो अपना सतलड़ा हार भूल गयी है; वही रात में पड़ा चमक रहा है। वातावरण की वह आर्द्र-शीलता कैसी प्राण-पोषक जान पड़ती है। संसार की व्यग्रता, उथल-पुथल तथा भयंकर संघर्ष से परे देहरादून किसी साधन-रत वानप्रस्थी के आश्रम के समान जान पड़ता है। मैंने न जाने कब से निश्चय कर लिया है कि मेरी कब्र——अगर ऐसा हो सका——देहरे के दामन में ही बनेगी। हृदय के गुप्त प्रेम की तरह देहरा मेरे मन में सदा के लिए मीठी याद ले कर बस गया है।

सब से बड़ी बात तो यह कि मिस्टर प्रसाद के अतिरिक्त देहरे में मेरा न कोई मित्र था न परिचित। इसी से मेरे-जैसे असामाजिक अहदी के लिए देहरे से बढ़ कर और कान स्थान हो सकता था। मेरे जीवन की बड़ी भारी महत्त्वाकांक्षा थी और अब भी है—कि देहरे के ऊपरी भाग में फुलवाड़ी से घिरा हुआ एक छोटा-सा बँगला हो, बरामदे में शाल ओ आराम-कुर्सी पर लेटा रहूँ; वहाँ बैठ हल्की धूप में फूलों और तितलियों का प्रेमाभिनय देखता रहूँ; और सूर्यास्त के समय वनराशि के बीच से दावानल के समान करुण वर्ण पश्चिम दिशा को देखते-देखते...रजनी-गन्धा, देहरादून की रजनी-गन्ध...उसी में मैं भी समा जाऊँ...

तुमने कभी देहरे में छावनी की नयी सड़क से सूर्यास्त का दृश्य देखा है? नहीं?—तो संसार में कुछ भी नहीं देखा। मन चाहता है, वहाँ एक दफे बरामदे में बैठ पाऊँ तो फिर उठूँ नहीं। दया कर कोई पास पड़ी तिपाई पर कुछ सिगार लाकर रख दे तो इस के बदले स्वर्ग का राज्य उसे मिलने की दुआ दे सकता हूँ। कोई दिन में दो-चार दफे चाय का प्याला पहुँचा दे तो उसे भी बहुत बड़ा आशीर्वाद दूँगा। हाँ; 'राज़,' की बात कह रहा था—।

मुझे देहरे में आठ तारीख को हाज़िर होना चाहिए था और फिर बाहर से विजया दशमी की छुट्टियाँ थीं। इधर सात तारीख तक मुझे बदली के लिए सात दिन का अवकाश मिला। इतने दिन निष्क्रिय रह, बरामदे में बैठ धुआँ पीने की आशा से मेरा मन आनन्द-विभोर हो उठा। आडर मिलते ही मैंने मिस्टर प्रसाद को एक तार, किसी निराले स्थान में एक बँगला हम लोगों के लिए ले लेने के लिए, दे दिया।

तीस को रविवार था। इस लिए विशेष यत्न से तैयारी कर शनिवार की सन्ध्या को ही देहली से चल देना चाहता था।

रानी के किये बिना तो कुछ हो नहीं सकता। और मेरी इस उतावली में रानी का सहयोग बिलकुल न था। अव्वल तो वह देहली-जैसे सुसभ्य परिचित समाज को छोड़ कर देहरा जाने की बात से ही प्रसन्न न थी। फिर सप्ताह-भर का समय जो हाथ में था, उसे वह यों न गवाँ देना चाहती थी। उसे किसी सहेली के यहाँ जाना था, किसी को वह आमन्त्रित किये हुए थी। किसी को वह भेंट देना चाहती थी; किसी से भेंट मिलने की उसे आशा थी। एक-आध दावत में उसे शामिल होना था और सामान खरीदना भी अनिवार्य था; जिस की कि देहरे-जैसे उजाड़ स्थान में मिलने की आशा न थी।

"बिल्ली के भागों छींका टूटा"—शुक्रवार दोपहर की डाक से लाहौर से एक भारी लिफाफ़ा आया। मायके के पत्रों पर रानी ऐसे टूटती है जैसे माँस पर चील। पत्र पढ़ चेहरे पर भारी चिन्ता का भाव ला उसने कहा, "तुम्हारा बहुत जल्दी देहरे जाना किसी तरह नहीं हो सकता।"

कुछ न समझ, विस्मय से मैंने पूछा, "क्यों, क्या मतलब ?"

"घर की तो कुछ फिक्र तुम्हें रहती नहीं। बैठ कर इस पत्र को सुनो।" उसने आज्ञा दी; और पत्र पढ़ने लगी। पत्र को सुनते हुए मैं मन-ही-मन अपना प्रोग्राम तय करने लगा। आधी पंजाबी और आधी हिन्दी मिले इस पत्र को सुन केवल इतना ही समझ सका कि रानी के मायके में उसकी भाभी, बहन या अन्य कोई प्रथम प्रसव की महा भयंकर और मुबारिक परिस्थिति में है और वहाँ उस का तुरन्त पहुंचना बहुत ज़रूरी है। न पहुंचने से जो बदनामी होगी उस का पारावार नहीं और फिर उसका जो परिणाम होगा वह...

देहरे में कुछ दिन बिलकुल अकेले रहने की आशा से मैं मन-ही-मन पुलकित हो उठा। इस अपराध को छिपा कर कहा,

"बेशक तुम आज ही चली जाओ। जब तक ज़रूरत हो वहाँ रहो और फिर सीधी देहरादून आ जाना।"

मेरी कमसमझी पर खीझ कर रानी ने कहा, "मैं चली जाऊँ? तुम क्या नहीं चलोगे? छुट्टी तो है ही, वहाँ क्या करोगे? तुम्हारे खाने-पीने का इन्तज़ाम कौन करेगा? और तुम कुछ समझते भी हो, समय पर ही अपना आदमी पहचाना जाता है। वहीं से सीधे देहरे चले चलेंगे। या मैं किसी दूसरे आदमी को तुम्हारी देख-भाल के लिए साथ भेज दूँगी।"

मेरा मन बुझ-सा गया। मैंने कहा, "यों चाहो तो मुझे घसीट कर जहाँ चाहे ले जाओ। पर मैं डाक्टर नहीं, नर्स नहीं! मेरी उपस्थिति से साली की प्रसव-वेदना में किस प्रकार कमी हो सकेगी, यह मैं नहीं समझ सकता। तुम मिलखी को साथ ले जाओ। मैं वहाँ सब इन्तज़ाम कर, न होगा विजया दशमी में लाहौर आ जाऊँगा। सात-आठ दिन रह भी लूँगा।"

जज की तरह मेरी ओर घूर कर रानी ने पूछा, "तो तुम वहाँ अकेले रहोगे कैसे?"

ब्याह हो जाने से पहले माँ समझती थीं, उन की नज़रों से ओझल होते ही मेरा जीवन खतरे में पड़ जायगा। ब्याह हो जाने के बाद से यह रानी का भी विचार है। परन्तु मैं अपने-आप को इतना अपदार्थ नहीं समझता। साहस कर कहा, "मकान प्रसाद ने ले ही लिया होगा।" झुँझला कर रानी बोली, "मकान क्या करेगा? खाना कौन पकायेगा? मेरे बिना सब मिट्टी हो जायगा।"

जवाब दिया, "घबराओ नही, जाते ही नौकर रख लूँगा!"

"हाँ, नौकर ऐसे ही मिल जाते होंगे!" उसने जवाब दिया।

"अस्तु, रानी को मना लिया। एक-दो ऐसे नुसखे हैं जो रानी पर अव्यर्थ हैं। उन का भेद अभी नहीं खोला जा सकता। मेरा

विचार है, ये सब महत्व की बातें, अपने पुत्र को जवान हो आने पर सिखा दूँगा ताकि बहू उसे बिल्कुल निरुपाय न कर दे।

सहारनपुर तक हम दोनो पंजाब मेल में एक–साथ ही आये और रानी राह-भर मुझे समझाती आयी। समझाया, "मकान प्रसाद के मकान से दूर मत लेना। केवल ज़रूरत का ही सामान खुलवाना और सब वैसे ही सँभला रहने देना। हाँ, और कोई नया आदमी नौकर मत रख लेना। प्रसाद के यहाँ से ही किसी आदमी को बुला लेना। और देखो, मेरी कसम, खाना प्रसाद के यहाँ ही खाना। कुछ खयाल-संकोच मत करना। उसकी लड़की के लिए कुछ बनवा कर मैं तुम्हारा सब संकोच धो दूँगी। तकलीफ़ या उदासी हो तो मेरे पास दौड़े आना या तार दे देना। मैं मिनट भी देर नहीं करूँगी।"

रानी की आँखें भीगती देख मैं डरा, कहीं वह लाहौर जाने का विचार ही न छोड़ दे। सहारनपुर के स्टेशन पर भी मैं उसे साहस बाँधता रहा। आखिर मेल के छूट जाने पर मैं निश्चिन्त हो स्टेशन से बाहर निकला। स्वतन्त्र हो पर फड़फड़ाने से एक अपूर्व आनन्द अनुभव हुआ।

मि० प्रसाद ने जो मकान मेरे लिए लिया था, उसे देख प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। छावनी की नयी सड़क पर, पहले पुल के पास, बिल्कुल एकान्त में, छोटा सा बँगला। प्रसाद अपने आदमियों से सामान रखवा रहे थे, उसी समय एक अनजान आदमी ने बरामदे में सलाम कर पूछा, "बाबू जी, नौकर रखोगे?"

चतुरता से मैंने पूछा, "तुम नौकरी करोगे? पहले कभी नौकरी किया है?"

उस आदमी ने सिर हिला कर हामी भरी। उस आदमी के

उदास चेहरे को देख सोचा, यदि इसे नौकर नहीं रखूँगा तो यह चेहरा कहाँ जायगा ? घर उसका दूर पहाड़ में, टेहरी राज में था । नाम उसने सताया फतेसिह और जाति ब्राह्मण । तनखाह माँगी आठ रुपये । मुँह माँगी कीमत देना मूर्खता में शामिल है; इस लिए कहा, "नहीं, सात मिलेंगे ।" हाथ बाँध कर उसने उत्तर दिया, "बाबू जी, काम देख लेना ।"

अब इनकार या भाव-तोल करने की गुंजाइश नहीं रह गयी । मैंने कह दिया, "अच्छा ।"

उपदेश देते समय रानी ने कहा था, "अनजाना आदमी रखोगे तो वह सब कुछ चुरा के भाग जायेगा ।" निश्चय से मैंने कहा, और जो हो, यह आदमी चोर नहीं हो सकता, आखिर तो मैं फिलासफी का प्रोफेसर हूँ । बाहर आ कर जब मि० प्रसाद को मालूम हुआ कि इसी बीच में मैंने नौकर भी रख लिया, तो निश्चय के स्वर में उन्होंने कहा, "यदि भाभी तुम्हें उल्लू समझती है तो अचरज क्या ?" परन्तु आदमी तो रख लिया गया था, उसे वचन दे दिया गया था ।

फतेसिह की देख-रेख में मेरी गृहस्थी चलने लगी । सामान एक दफे ढंग से लग जाने पर कुछ भी कठिन न था । मेरा समय प्राय: बरामदे में कुर्सी पर लेटे-लेटे ही कटता । फतेसिह सब काम सँभाले था । पहले तीन-चार रोज़ कुछ चखचख ज़रूर हुई । मैं उसे बात-बात पर डाँटता रहा--यह देखो दरी पर मिट्टी पड़ी है, बरामदा मैला है, पानी के गिलास में उँगली मत डालो, तौलिया वहाँ पर मत पड़ा रहने दो, कपड़े खूँटी पर लटकाओ ! हफ़्ते-भर में वह मेरे काम लायक हो गया, या मैं उस के काम लायक हो गया ।

विजया दशमी में, जैसा कि मेरा पहले ही विचार था, मैं

लाहौर नहीं गया । मैंने लिख दिया मैं सब प्रकार से आराम से हूँ और लाहौर आना कई कारणों से सम्भव नहीं। बाद में रानी का आना भी एक मास तक नहीं हो सका । मेरे और फतेसिंह के ये दिन बड़ी शान्ति से कट गये ।

फतेसिंह में अक्ल की ज़रा कमी थी, वर्ना वह आदमी था सोने का । बिना बुलाये वह कभी न बोलता और हाथ का निहायत सच्चा । दो-तीन काम उस से अक्सर विगड़ जाते । सुबह की चाय में उसे अक्सर देर हो जाती । जल्दी के लिए कहना फ़िज़ूल था । जल्दी करने पर उसके हाथ से बर्तन ही छूट जाते। दोपहर का खाना भी कुछ उलझन का काम था चाय अलबत्ता वह दिन में कई दफे तैयार कर सकता था । जूते पर पालिश करवा लेना, टोपी झाड़ना, हाथ धुला कर तौलिया देना, मेज़ झाड़ देना, ये छोटे-छोटे काम थे जो उसे प्रायः भूल जाते थे । उस में एक एब भी था। जहाँ उसे डाँटा, उस की रही-सही अक्ल भी काफूर हो जाती । आख़िर करता क्या ? अकेला आदमी था, क्या क्या देखता ?

अपनी भूल से वह स्वयं ही दुःखी हो जाता । उस समय कुछ भी कहना सम्भव न था । वह कहा करता था, "बीबी जी आयेंगी तो मैं सब सीख जाऊँगा ।" लेकिन 'बीबी जी' ने उसे खब सिखाया ।

कभी—कभी मैं दिल बहलाने के लिए उसे समीप बैठा कर बात-चीत करने लगता...उस के यहाँ कितनी ज़मीन है, बाल-बच्चे कितने हैं, कुछ कर्ज़ है या नहीं ? यह बातें कितनी ही दफे दुहरा-दुहरा कर मैंने उस से पूछीं। इस बात-चीत से एक आत्मीयता का बोध उसे होता था। कुछ दिन में हम लोग आत्मीयों की भाँति समीपी हो उठे । मुझे भी उस के व्यवहार में एक सहानुभूति और समवेदना अनुभव होती थी । मुझे चुप-

चाप पड़े देख वह कुछ सोचने लगता और सन्तुष्ट हो खाना न खाते देख उस की आँखें भीग जातीं । वह प्रायः पूछता, "बीबी जी कितने रोज़ में आयेंगी ?" बीबी जी के दर्शनों की उसे बड़ी साध थी । आखिर एक दिन 'बीबी जी' आ गयीं ।

आते ही रानी ने विस्मय से आँखें फाड़ कर पूछा, "हैं, तुम्हें क्या हो गया ?"

"कुछ भी तो नहीं ?" मैं ने जवाब दिया ।

वाह आधे भी तो नही रहे । मुँह सूख कर कैसे काला पड़ गया है ।" यह कह क्षुब्ध दृष्टि से रानी मेरी ओर देखने लगी । अपना मुख तो उस समय दर्पण में देख नहीं सका । हां, अलबत्ता रानी के मुख पर ज़रूर चिन्ता की छाया दिखाई दी । परिहास के लिए, मान कर मैं ने कहा, "तुम तो मा की गोद में जा मुझे भूल गयीं, क्या करता ?" झूठे अपवाद से खीझ कर उसने कहा, "झूठ-झूठ लिखते रहे : मोटा हो रहा हूँ ।" इतने में बदकिस्मत फतेसिंह ने आ हाथ जोड़ 'नमस्ते' की ।

रानी ने पूछा, "यही है तुम्हारा समझदार आदमी ?" रानी को सन्देह हो गया, सब खूराक स्वयं खा कर फतेहसिंह ने मुझे कमज़ोर कर दिया । वह उस से नाराज़ हो गयी । रानी के साथ पुराना नौकर मिलखी भी था । फतेसिंह ने मिलखी को ऐसे देखा, जैसे उस का बड़ा भाई हो । और मिलखी ने उसे देखा प्रतिद्वन्दी की दृष्टि से ।

फतेहसिंह को मैं ने तुरन्त चाय बना लाने को कहा । वह चाय बना लाया । रानी ने ट्रे की ओर देख कर कहा, "यह क्या ? खाने के लिए घर में कुछ नहीं ?" फतेसिंह अपराधी की तरह स्तब्ध रह गया । उसे ढ़ाढस देने के लिए मैं ने कहा, "जाओ पावरोटी के टोस्ट सेंक लाओ ।"

टोस्ट के नाम से फतेसिंह को डर लगता था। वह कहता था, "यह तो रूई की तरह जल जाते हैं।" इस लिए चाय में यों ही पी लेता था। मिलखी की ओर देख कर मैंने कहा, "जाओ जा कर उसे बता दो।" चाय छोड़ते-छोड़ते एक प्याली को उठा रानी ने यों नाक सिकोड़ कर देखा, मानो गन्दी नाली में से उठा बिना धोये उसे वहाँ रख दिया गया हो। झुँझला कर उसने कहा, "यह क्या गन्द तुम ने पाल लिया है।" और मिलखी को पुकार उसने हुकुम दिया, "हटाओ यह सब और साफ कर के लाओ।"

पन्द्रह-बीस मिनट में नये सिरे से लगी ट्रे आ पहुंची। परन्तु न जाने क्यों, उन खस्ता टोस्टों और कायदे से बनी चाय में वह सन्तोष न हुआ जो फतेहसिंह के अल्हड़ हाथों होता था। मिलखी की चुस्ती-फुर्ती देख फतेहसिंह मुँह बाये रह गया। रानी मिलखी को ले घूम-घूम कर कमरों में सफाई करवा सामान ढंग से रखवाने लगी और फतेसिंह को फटकार कर पूछती जाती, "यही तरीका है? यही सफ़ाई है?"

सोने के कमरे में पलंग के सामने दस-पन्द्रह पुस्तकें और अखबारों के पन्ने फेल रहे थे। उन्हें उठाने को न फतेसिंह को सुध रहती न मुझे। धोबी के यहाँ से जो कपड़े आये थे, वे आलमारी के सामने ढेर-के-ढेर पड़े थे और उतरे हुए कपड़े गुसलखाने में। यह सब देख-देख रानी ऐसे खीभती जैसे पानी के छींटे से बिल्ली। फतेसिंह उस के यह तौर देख-देख काँप रहा था।

तीसरे ही दिन में अभा कालेज से लौटा न था। रानी बरामदे में बैठी कुछ सोजनकारी कर रही थी। उसने आवाज़ दी, "फतेसिंह, एक गिलास पानी लाओ।" गिलास को यत्न से माँज, ऊपर तक भर, हथेली पर टिका फतेसिंह ने फौरन् रानी

के सामने पेश किया । कए नज़र गिलास की ओर डाल रानी तीव्र दृष्टि से फतेसिंह की ओर देखती रही । फतेसिंह समझ गया, जरूर कुछ चूक हुई है । परन्तु वह चूक क्या है, सो वह कुछ समझ न सका ! उसने आँखें झुका ली । गम्भीरता से रानी ने पूछा, "तुम्हें पानी देने की भी तमीज़ नहीं ?" और सुई की नोक से संकेत कर समझाया, "जब पानी लाओ, गिलास को तश्तरी में रख उसे ढक कर लाओ ।" उस समय दया कर वह गिलास रानी ने उस के हाथ से स्वीकार कर लिया ।

गिलास के सिरे से पानी की एक बूँद धीरे-धीरे नीचे फिसलती आ रही थी । एक घूँट रानी ने लिया था कि वह बूँद उस की साजानकारी पर आ गिरी । बूँद क्या गिर पड़ी, क्रोध से गिलास फुलवाड़ी में फेंक दिया और डांट कर कहा, "निकल यहाँ से बदतमाज़, जानवर !"

उस एक बूँद के बदले न जाने कितनी बूँदें फतेसिंह की आँखों से गिर गयीं, इस का लेखा किसी के पास नहीं । चतुर नौकरीपेशा लोगों की तरह वह अपमान सहने का आदी न था, नहीं तो क्षमा माँग कर टिक रहता । तुरन्त उसका हिसाब कर दिया गया । वह चला गया । कालेज से लौट कर वह सब वृतान्त सुना । मन को बहुत चोट लगी । मुख से कुछ कह न सका इच्छा हुई फतेसिंह को ढूंढ़, उसे समझा कर लौटा लाऊँ, परन्तु कर न सका । उस से रानी की हेठी हो जाती ।

उस शनिवार को लड़कों का कोई मैच था । सूर्यास्त के पश्चात् परेड के मैदान को चीरता हुआ चला आ रहा था । सहसा दोनों हाथ जोड़, फतेसिंह सामने खड़ा हुआ । मन के आवेश में उस के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये और गद्‌गद् स्वर में पूछा, "कहाँ चला गया तू ?" उसने लज्जा से

अपने हाथ खेंच लिये। मुझे भी बोध हुआ परन्तु समीप किसी परिचित को न देख, अधिक अव्यवस्थित हुए बिना पूछा, "अरे, अब कहाँ हो ?"

आँखें पोंछते हुए उसने उत्तर दिया, "कहीं नहीं !" अब वह गाँव को लौट जायगा। उस समय यदि बस चलता तो फतेसिंह को घर लिवा जाता।

उस झुटपुटे अँधेरे में हम दोनों आस-पास खड़े रहे। भीगे हुए गले से फतेसिंह ने कहा, "बाबू जी, गलती माफ़ करना, आप माँ-बाप हो। आप का अन्न खाया है।" उस की बात से चोट खा उस के कन्धे पर हाथ रख मैंने जवाब दिया, "अरे जाने दो, यह सब कुछ नहीं।" और जेब से दस का नोट निकाल उस के हाथ में थमाते हुए आगे बढ़ गया।

कुछ कदम से लौट कर देखा, वह खड़ा आँसू पोंछ रहा था। पुकारा, "फतेसिंह !" लपक कर वह समीप आ गया। उसे फिर समझाया, "घबराओ मत !"

उसने उत्तर दिया, "भूलना मत बाबू जी !" हँस कर मैंने कहा, "अच्छा ! चिट्ठी लि ोगे !" सिर हिला कर उसने हामी भरी।

सात-आठ बरस के बच्चे जैसे अक्षरों में कभी-कभी फतेसिंह की चिट्ठी आती है। 'श्री' से आरम्भ कर उस में वह अपने कल्याण की सूचना और हमारे कल्याण की कामना करता है। बड़े-बड़े अक्षरों में वह सदा रानी के लिए जै राम जी की बाँचना' भी लिखता हैं। परन्तु रानी को वह मैं कभी बता न सका !

कड़ा जाड़ा आरम्भ होने पर जब रानी मोटे कोट निकाल हल्के कोट आलमारी में बन्द करने लगी, जेबों की तलाशी में

वह एक चिट्ठी उस के हाथ लग गयी । अनेक बार पढ़ जाने पर आ कर बोली, "वाह रे मेरे फिलासफ़र ! अब तुम लोगों के कूड़े-करकट में से उन की चिट्ठियाँ बीन-बीन कर मनस्तत्त्व के किसी सिद्धान्त का आविष्कार करने वाले हो क्या ? देखती हूँ, तुम्हारी देख-रेख के लिए मुझे अब प्रतिक्षण साथ रहना पड़ेगा !'

चाहता तो रानी को हँस कर टाल देता, परन्तु एक कड़ी प्रतिज्ञा है—हम दोनों परस्पर कोई रहस्य छिपा कर नहीं रख सकते । परन्तु फतेसिंह के सम्बन्ध के रहस्य को उस की अनुमति के बिना खोल डालना भी क्या एक प्रकार का विश्वासघात न होता ?

इस लिए...

महादेवी वर्मा

[जन्म सन् १९०७]

महादेवी जी का जन्म फरुखाबाद में हुआ। नाना कवि और भक्त थे, माँ भी भक्त कवियों की पटावली में विशेष रुची रखती थीं और इन से महादेवी जी का परिचय उन्ही के द्वारा हुआ; उन्होंने पहले व्रजभाषा में ही पद लिखना आरम्भ किया। अनन्तर श्री मैथिलीशरण गुप्त की की कविताओं से प्रभावित हो कर खड़ी बोली में लिखने लगीं। सन् १९३३ में संस्कृत में एम० ए० कर के प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रिंसिपल नियुक्त हो गयीं।

महादेवी जी कवि ही हैं, पर गद्य पर भी उनका पूरा अधिकार है। वह चित्रकार भी हैं, और उनका गद्य एक ओर कवित्वमय है तो दूसरी ओर उस में चित्र खींचने की भी बड़ी शक्ति है। उन्होंने संस्मरणात्मक रेखा-चित्र लिखे हैं जिन में कई ऐसे हैं कि उन्हें कहानी माना जा सकता है; उन की कथावस्तु कल्पित भले ही न हो, वस्तु का विन्यास बड़े कलामय ढंग से किया गया है और विधान एक मँजे हुए हाथ का साक्षी है। निबन्धों और कविताओं से भिन्न उन की कहानियों की भाषा सरल है; उस में बड़ा मँजाव और संयम है, वह सहज अनुभूति या अनुभूति की अभिव्यक्ति की भाषा नहीं, एक ऐसी शालीनता की भाषा है जिस में सूक्ष्म संवेदना, करुणा और ममता तो है पर संस्कारों और लोकाचार का कड़ा नियन्त्रण भी। महादेवी के रेखा-चित्र प्रायः करुणा और वात्सल्य से ओत-प्रोत होते हैं, और विशेष रूप से उत्पीड़ित नारी के प्रति उन्हें अगाध सहानुभूति है।

महादेवी वर्मा

लछमा

घुल-घुल कर धूमिल हो जाने वाले पुराने काले लँहगे को एक विचित्र प्रकार से खोंसे, फटी मटमैली ओढ़नी कई फेंट दे कर कमर से लपेटे और दाहिने हाथ में एक बड़ा-सा हँसिया सँभाले लछमा, नीचे पड़ी घास-पत्तियों के ढेर पर कूद कर खिल-खिला उठी। कुछ पहाड़ी और कुछ हिन्दी की खिचड़ी में उसने कहा, "हमारे लिए क्या डरते हो? हम क्या तुम्हारे-जैसे आदमी हैं? हम तो हैं जानवर...जंगली जानवर? देखो हमारे हाथ-पाँव! देखो हमारे काम!"

मुक्त हँसीं से भरी यह पहाड़ी युवती न जान क्यों मुझे इतनी भली लगती है!

धूप से झुलसा हुआ मुख ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने कच्चे सेव को आग की आँच पर पका लिया हो। सूखी-सूर्खी पलकों में तरल-तरल आँखें ऐसी लगती हैं मानो नीचे आँसुओं के अथाह जल में तैर रही हों और ऊपर हँसी धूप से सूख गयी हों।

शीत सहते-सहते ओठों पर फैली नीलिमा, सम दाँतों की सफेदी से और स्पष्ट हो जाती है। रात-दिन कठिन पत्थरों पर

दौड़तें-दौड़तें पैरों में और घास काटते-काटते और लकड़ी तोड़ते-तोड़तें हाथों में जो कठिनता आ गयी है उसे मिट्टी और गोबर की आर्द्रता ही कुछ कोमल कर देती है।

एक ऊँचे टील पर लछमा का पहाड़ के हृदय पर पड़े छाले जैसा छोटा घास-फूस का घर है।

बाप की आँखें खराब हैं, माँ का हाथ टूट गया है और भतीजी-भतीजे की माता परलोक-वासिनी और पिता विरक्त हो चुका है। सारांश यह कि लछमा के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति इतना स्वस्थ नहीं जो इन प्राणियों की जीविका की चिन्ता कर सके। और इस निर्जन में लछमा कौन-सा काम करके इतने व्यक्तियों को जीवित रखे, यह समस्या कभी हल न हो पाती। अच्छे दिनों की स्मृति के समान एक भैंस है। लछमा उस के लिए घास और पत्तियाँ लाती है। दूध दुहती, दही जमाती और मट्ठा बिलोती है। गर्मियों में झोंपड़े के आसपास कुछ आलू भी बो लेती है। पर इस से अन्न का अभाव तो दूर नहीं होता, वस्त्र की समस्या तो नहीं सुलझती।

लछमा की जीवन-गाथा उस के आँसुओं में भीग-भीग कर अब इतनी भारी हो गयी है कि कोई अथक कथावाचक और अचल श्रोता भी उस का भार वहन करने को प्रस्तुत नहीं।

सभ्यता के शेष चिन्हों से साठ मील दूर स्थित एक गाँव में लछमा का विवाह हुआ था। उस की ससुराल में बहुत ज़मीन थी, बहुत खेती होती थी, बहुत गाय, भैंस, बैल पले थे...सारांश यह कि सभी कुछ बहुत था। पर कठोर भाग्य नें अपना व्यंग्य छिपाने के लिए एक स्थान निकाल ही लिया। उस का पति पागल तो नहीं कहा जा सकता, पर उस का मानसिक विकास एक बालक के विकास से अधिक नही हो सका। पागल लड़के की बुद्धिमती और परिश्रम बहू को सास-ससुर चाह सकते हैं, पर

देवर-जेठों के लिए तो वह एक समस्या ही हो सकती है, क्योंकि उस की उपस्थिति में भाई की सम्पत्ति का प्रबन्ध करना भी आवश्यक हो जाता है और उसे आत्मसात् करने की इच्छा रोकना भी अनिवार्य हो उठता है।

अनेक अत्याचार सह कर भी जब लछमा ने अपना अधिकार छोड़ने की इच्छा नहीं प्रकट की तब एक बार वह इतनी अधिक पीटी गयी कि बेहोश हो गयी और मृत समझ कर खड्ड में छिपा दी गयी। कैसे वह होश में आयी और किस असह्य कष्ट से घसिट-घसिट कर खड्ड के पास दूसरे गाँव तक पहुंच सकी, यह बताना कठिन होगा। अपने सम्बन्धियों के अत्याचार के सम्बन्ध में उसने एक शब्द भी मुँह से निकलने न दिया, क्योंकि इस से उस के विचार में 'घर की मर्जाद' चली जाती! इसके अतिरिक्त अपने मारे-पीटे जाने की बात अभिमानिनी लछमा कैसे बताती। अचानक बहुत ऊँची सिला से गिर कर चोट खा गयी है, इस कल्पित कथा के असत्य में जिस साहस का परिचय मिलता था वह पीट जाने की क्रूर कहानी के सत्य में दुर्लभ हो जाता।

मार्ग म तीन दिन तक कुछ खाने को न मिल सका। लछमा हँस कर कहती है, "जब बहुत भूखा हुआ तब पीली मिट्टी का एक गोला बना कर मुँह में रखा और आँख मूँद कर सोचा, लड्डू खाया। बस फिर बहुत-सा पानी पी लिया और सब ठीक हो गया।" मृत्यु की वैतरणी पार कर के आयी हुई लछमा को देख कर जब नैहर वालों ने उस की सुसराल वालों को दण्ड देना चाहा तब लछमा के तीव्र विरोध ने ही एक महाभारत का सूत्रपात रोका।

इस अभागी स्त्री की छाया में मानो दुख स्थायी रूप से बस गया है। उस के लौटते ही भौजाई ने एक बालिका और एक

मास-भर के शिशु पुत्र को उस की गोद में रख कर चिर-काल के विदा ली : टूटे शरीर और फूटे भाग्य के साथ लछमा को जो पूर्ण और स्वस्थ हृदय मिला है उसी को ले कर उसने यह मधुर-कटु कर्तव्य भार सँभाला । पर वह बेचारी सन्तान-पालन क्या जाने ! न तो आसपास किसी छोटे बालक की माता ही मिल सकी और न वह शिशु कटोरे से दूध पीना ही सीख सका । तब लछमा की बुद्धि ने नया उपाय खोज निकाला । वह अनु-नय-विनय कर के किसी से तेल की बोतल खाली करा लायी और उस में कपड़े की, बत्तीनुमा कुछ ढीली डाट लगा कर बच्चे को पानी मिला भैंस का दूध पिलाने लगी । सुसराल के अत्याचार से उसकी हड्डी-हड्डी ढीली हो गयी है । कुछ देर बैठनें से रीढ़ का दर्द व्याकुल कर देता है और खड़े रहने से घुटनों में चिलक उठती है । पर उसने विना किसी की सहायता के रात-रात भर रह कर, दिन-दिन भर झुके रह अपनी भाभी की धरोहर को पाल लिया । और आज तो वह शिशु इतना बड़ा हो गया है कि पालतू पशु की तरह बुआ का मूक अनुसरण करता फिरता है ।

पहली बार लछमा को देख कर मेरे मन में उसे प्रयाग ला कर पढ़ाने-लिखाने का विचार उठा था । पर मेरे प्रस्ताव के उत्तर में लछमा ने केवल अपने जीर्ण-शीर्ण घर की ओर देख कर सिर झुका लिया । उतने प्राणियों को वह किस के भरोसे छोड़ आती उस समय आशा थी कि पत्नी-वियोग से अव्यवस्थित भाई सम्भवतः लौट कर कपना कर्तव्य सँभाल ले, पर उस आशा के दुराशा सिद्ध होने पर भी लछमा की उजली हँसी निराशा की छाया में म्लान नहीं हुई । वह सहज-भाव मे मुस्करा कर कह देती हैं कि जंगल में पढ़-लिख कर क्या होगा । यहाँ तो पेड़ पर चढ़ कर लकड़ियाँ और पत्तियाँ तोड़ना आना चाहिए । जब बूढ़े

माँ–बाप नहीं रहेंगे और बच्चे बड़े हो चुकेंगे तब भगवान् उसे संसार में क्यों पड़ा रहने देंगे। फिर उसे अवश्य ही ऐसा जन्म मिलेगा जिस में मेरे पास रह कर पढ़-लिख भी सके और कर्तव्य का पालन भी कर सके।

यदि मैं उसे पढ़ाना चाहूँ तो कम से कम दूसरे जन्म तक प्रतीक्षा करूँ, इस विचित्र कथन में यदि कर्तव्य के प्रति इतनी सहज निष्ठा और जीवन के प्रति इतना सरल विश्वास न होता तो पगली लछमा पर हँसने को जी चाहता।

समता के धरातल पर सुख दुःख का मुक्त आदान-प्रदान यदि मित्रता की परिभाषा मानी जावे तो मेरे पास मित्र का अभाव है।

अपने आनन्द के प्रकाशन के लिए मेरे निकट कला ही नहीं पशु-पक्षी, पेड़ पौधे भी वहुत महत्व रखते हैं, क्यों कि उन पर भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर मुझे पूर्ण सन्तोष हो जाता है। रहा दुःख का प्रकटीकरण—सो उस का लेश मात्र भी, भार बना कर किसी को देना मुझे अच्छा नहीं लगता।

दूसरे के सुख में एक प्रकार की निश्चिन्तता का अनुभव करके मैं दूर रह जाती हूँ। और दुःखग्रस्त् से मेरे सम्बन्ध का आधार वात्सल्य ही रहता है।

पर कँटीली डालियों से छिद हाथों और पैने पत्थरों से क्षत-विक्षत पैरों वाली, मलीन पर-हास से उज्जवल लछमा के प्रति मेरे मन में सम्मानयुक्त सख्यत्व की भावना ही प्रधान है। वह अपने दुःख में न इतनी अस्थिर है, न हल्की कि उसे मेरे सहारे की आवश्यकता जान पड़े। और अनेक अवसरों पर तो मैंने उसे अपने आप से वहुत गुरू और ऊँचा पाया है।

लछमा के व्यवहार में भी मुझे एक ऐसी समानता का अनुभव होता है जिस का अन्य पहाड़ी स्त्रियों में अभाव है। मेरे

अपने बीच का अन्तर वह अपनी सहज ममता से भर लेती है, अतः मुझे उस तक पहुँचने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

मैं अच्छे व्यंजन खा सकती हूँ, यह जान कर भी वह बड़े यत्न से ऐसी वस्तुएँ लाती ही रहती है जो जंगल में प्राप्य हैं। एक दिन वह छत्ते के मोमी टुकड़ों के साथ हाल का निकाला हुआ शहद ले कर दौड़ी आयी और तुरन्त खा लेने के लिए अनुरोध करने लगी। मीठा मुझे वैसे ही कम रूचता है, उस पर मधु को देखते ही मुझे मधुमक्खियाँ इस तरह स्मरण आने लगती हैं कि खाना कठिन हो जाता है। पर लछमा के अनुरोध की रक्षा के लिए कुछ चखना ही पड़ा।

वहाँ तो अनेक व्यक्ति मधुमक्खियाँ पाल कर मधु का व्यापार करते हैं। पर लछमा न तो मधुमक्खियों को पालने के लिए काठ का बना घर खरीद सकती थी और न उसके घर की दीवारें ही ऐसी थीं जिन में ऐसा घर बनाया जा सकता। पूछने पर पता चला की घर कि एक दीवार फट गयी है। लछमा को उस की दरार में मधुमक्खियाँ पालने की इच्छा हुई। पर मक्खियाँ वहाँ पहुंचे तो क्यों कर। प्रतीक्षा करते-करते थक कर लक्षमा मधु-मक्खियों को पकड़-पकड़ उस दरार में बैठाने लगी। कई बार उन के काटने से उसके हाथ सूज गये——कई बार वे उस दरार के संकीर्ण घर को नापसन्द कर उड़ गयीं, पर अन्त में कुछ उदार मक्खियों ने वहाँ बस कर बेचारी लछमा को कृतार्थ किया उन्हीं के छत्ते का पहला मधु मेरे लिये लायी है।

एक बार इसी प्रकार मेरे आने के दिन सब जगह घूम-घूम कर, वह मुझे विदा में देने के लिए काले अँगूरों का गुच्छा ले आयी थी। भैंस जब दूध देती है तब कभी काठ की प्याली में दूध, कभीं दौने में दही और कभी पत्ते पर मक्खन लिये लछमा

दौड़ती चली आती है और गोबर-मिट्टी से गीले पैरों के द्वारा सूखे फर्श पर मटमैले चित्र-से बनाती हुई मेरी चौकी के पास पहुँच कर थोड़ा-सा खा लेने के लिए हठ-भरा अनुराध करने लगती है। आदि से अन्त तक मेरी शिक्षा छात्रावास में रह कर ही हुई है—बीच-बीच में घर जाने पर माँ ही खिलाने-पिलाने की विशेष चिन्ता करती थीं, पर उन का चिन्ता करना नियम का अपवाद-जैसा लगता रहा है, इसी से मैं ऐसी चिन्ता की अभ्यस्त नही हूँ। पढ़ना समाप्त करते ही मैं ने अनेक विद्यार्थिनियों की चिंता करने का कर्तव्य स्वीकार कर लिया, अतः मुझे हठ कर खिलानें वाले व्यक्तियों का अभाव ही रहा है। लछमा का हठ करना मेरे आरोपित और कल्पित बड़प्पन को दूर कर मुझे फिर बच-पन की सहज और स्वाभाविक स्थिति म पहुँचा देता है।

वह अपनी ममता में सरल है। अपने लिखने-पढ़ने में बहुत व्याघात पड़ते देख एक दिन मैंने खिझला कर लछमा से कहा अब आने पर मैं सामनें वाले पहाड़ की सुनसान चोटी पर कुटी बना कर रहूँगी जहाँ कोई न पहुँच सके।

निरन्तर सब के भोज़न की चिन्ता करते-करते वह जान चुकी है कि भोजन की समस्या सहज सुलझने वाली नहीं होती और बिना उसे सुलझायें संसार का कोई काम सम्भव नहीं। निर्जन में कहीं मैं भी इसी समस्या में उलझ कर न रह जाऊँ, यही सोच कर उसने जो उपदेश-गर्भित अनुरोध किया वह उसी के योग्य था। लछमा की इच्छा है कि जब उस की भैंस की दो वर्ष की पड़िया चार की हो कर दूध देने लगे तब मैं पहाड़ की ऊँची चोटी पर जा कर रहूं। तब एक भैंस का दूध बढ़ा–बूढ़ी और बच्चों के काम आयेगा और दूसरी का मेरे। वह प्रति दिन नियम से एक सेर दूध, एक सेर दही, दो–चार आलू और लकड़ी-

पानी आदि वहाँ पहुँचा आया करेगी। वह बोलेगी भी नहीं देखेगी भी नहीं—केवल दरवाज़े पर सब-कुछ रख कर लौट आया करेगी। फिर जब मेरी मोटी पोथी लिखी जा चुके और मैं अकेले रहते-रहते उब जाऊँ तो 'लछमा, लछमा', पुकारते ही वह सौ काम छोड़ कर वहाँ जा पहुँचेगी और सब समान यहाँ, तक कि कुटी का छप्पर भी ढो कर नीचे ले आवेगी। इस महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव के अन्त में जब लछमा बड़ी विनीत गम्भीरता से मेरे मुख की ओर देखने लगी तब मैं विस्मय से बोल ही न सकी। एकान्त और निर्जन सहज प्राप्य है, मोटे-मोटे पोथे लिख लेना भी कठिन नहीं, पर लछमा-जैसा अकारण ममतालु सहायक दुर्लभ ही रहेगा।

लछमा का यह कथन, कि उसके पास भाग्य की कमी है समझ की नहीं, बहुत-कुछ सत्य है।

एक बार मेरा हिमालय का चित्र बनाना देखते-देखते वह बोल उठी, "सामान मिलता तो मैं ठीक-ठीक बर्फानि उतार देती।" मैंने उपहास के भाव से प्रश्न किया, "क्या-क्या चाहिए ?" लछमा ने कुछ विचित्र भावभंगी से जो उत्तर दिया उस का अर्थ था कि उसे एक बड़ा-सा नीला कागज़ चाहिए और सफेद और हरा रंग। फिर वह एक बहुत ऊँची चोटी पर किसी सम-तल चट्टान के ऊपर अपना नीला कागज़ बिछा कर दिन भर बैठेगी और कहीं दीवार की तरह खड़े, कहीं छप्पर की तरह फैले और कहीं मन्दिर के समान कलशदार हिमालय को उतारेगी। नीला—कागज़ आकाश रहेगा, सफेद से बर्फ बनेगी और हरे से देवदार पेड़। छोटी लछमा की बुद्धि का इतना विशाल परिचय पा कर चकित होना ही स्वाभाविक था। मुझे सफेद कागज़ पर प्रयास से नीला आकाश बनाते देख उसने नीले कागज़ की बात सोच ली होगी।

पूछने पर पता चला कि विना सिखाये ही लछमा को फूल-पत्ती वेल-वूटे वनाने की इतनी चाह है कि वह अपनी ही नहीं पड़ोस से घरों की दीवारों को भी गेरु और चावल से गोद चुकी है। उस की चित्र-रचना में चाहे अर्थ कुछ न रहे पर वनाने वाली उँगलियों का अपटु परिश्रम और साधन-हीनता तो प्रत्यक्ष हो ही जाती है।

इसी प्रकार देखते-देखते वह कुछ-कुछ बुनना भी जान गयी है, पर ऊन और सलाइयों के अभाव में बूढ़े वाप के लिए स्वेटर बुनने की इच्छा साकार न हो पायी। दूसरों से उसकी निराशा का कारण जान कर मैंने उसे वे वस्तुएँ मँगवा दीं अवश्य, पर यदि सर्दी में पिता की रक्षा का प्रश्न न होता तो वह इन सव को छोड़ कर भाग खड़ी होती, इस में सन्देह नहीं। मुझ पर उस का स्नेह कम नहीं है पर उस स्नेह को साधन बना कर छोटे-छोटे स्वार्थ की सिद्धि भी उसे अभीष्ट नहीं रही।

साधारणतः असंख्य असुविधाएँ और विविध अभाव पहाड़ी जीवन में स्वार्थ-भावना को वहुत स्थूल और स्पष्ट रूप दे देते हैं, पर लछमा के जीवन को मैंने इसका अपवाद ही पाया।

मुझे उस की स्वाभाविक हँसी के पीछे छिपे आँसुओं को खोजना पड़ता है और उन आँसुओं के नीचे छिपे कारणों का पता लगाना पड़ता है। फिर अन्त में, "हम तो ऐसे ही जंगली हैं, हमें क्या चाहिए," आदि के द्वारा लछमा मेरा सारा परिश्रम निष्फल किये विना नहीं रहती।

हृदय से इतनी स्वच्छ लछमा को वाहर से मलिन ही रहना पड़ता है। कभी-कभी तो अपनी मलिनता पर आप ही झुँझला कर वह कह उठती है, "मैं तो इतनी मैली हूँ। मुझे भीतर मत आने दो, वाहर ही रोक दिया करो। देखो तो, सारा-का-सारा घर कैसा लगने लगता है।" उस के इस प्रकार के उद्‌गार स्वयं अपने

ही प्रति हुआ करते हैं, क्योंकि उन के उपरान्त वह मुझे सफाई देने लगती है––"पाँव तो सबेरे ही मल-मल कर धोये थे पर आधे रास्ते में भैंस को घास डालने लौट जाना पड़ा। लहँगा तो कल पत्थर पर मोगरी से पीट-पीट कर छाँटा था पर बच्चे ने मिट्टी-भरे हाथ पोंछ दिये। ओढ़नी तो परसों झरने में धो कर सुखायी पर घास बाँधने की रस्सी बीच में टूट गयी और इसी से बाँध कर लाना पड़ा।"

न जाने किस युग में लछमा के पास एक काठ की कंघी थी। फिर जब से वह खोयी तब से झरने में धो कर बहुत उलझे बालों को नोच कर फेंक देना ही उसका प्रसाधन हो गया है। मेरे यहाँ पुराने काले कंघे का उपहार पा लेना उस के लिए एक असम्भावित घटना हो गयी। उस कंघे को दराती के साथ कमर में खोंस वह पहाड़ के किस-किस कोने में किस-किस झरने की सहायता से शृंगार नहीं करती फिरी, यह बताना कठिन है, पर उस की विचित्र केश-रचना-जनित प्रसन्नता देख कर आँसू आये बिना नहीं रहते।

शृंगार के असंख्य अभूतपूर्व साधनों से भरी बीसवीं शताब्दी में भी जिस स्त्री के लिए इतनी तुच्छ वस्तु दुलर्भ है उस के दुर्भाग्य को कौन-सा नाम दिया जावे!

एक बार अन्य स्त्रियों से सुना कि लछमा न जाने क्या धूप दीप कर के उन की संतान का अमंगल मनाती रहती है। पूछने पर पता चला कि वह संतान का तो नहीं पर कुछ आँखों का अमंगल अवश्य मनाती है। उस के घर न जाने कब की पुरानी और कीड़ों की खायी हुई दुर्गा की तस्वीर है। सबेरे-साँझ उस के सामने कुछ अंगारे रख कर और उन पर कुछ सूखी पर सुगन्धित पत्तियों की धूप डाल कर वह कह लेती है कि जो उस पर बुरी दृष्टि डाले उस की आँखें जल कर क्षार हो जावें।

दूसरों की आँखों का अमंगल चाहने से किसी की पवित्रता की रक्षा नहीं होती; क्योंकि वास्तविक पवित्रता का प्रमाण तो यही है कि मलिन-से-मलिन दृष्टि भी उसका स्पर्श कर पवित्र हो जावे, इस सत्य को समझना सहज नहीं था। पर लछमा को मेरे कथन के सूक्ष्म भाव तक पहुंचने में कठिनता नहीं हुई। तब से उस के धूप-दीप में अपनी ही नहीं, सब की कल्याण-कामना रहती है।

यह पर्वत की कन्या जितनी निडर है उतनी ही निश्चल। जिस प्रकार अपनी दरातीं के साथ वह अँधेरी-से-अँधेरी रात में भी मार्ग ढूँढ़ लेती है उसी प्रकार अपने निश्चय के साथ वह घोर से-घोर विरोध में भी अटल रह सकती है।

कुछ वर्ष पूर्व लछमा के जीवित हो जाने का समाचार पा कर ससुराल के कुछ सम्बन्धी उस के अबोध पति को ले कर उसे बुलाने आये। उसने अपने बालक–बुद्धि पति से अनुरोध किया कि वह अपने भाइयों को सब-कुछ सौंप कर आ जावे और उसी के पास रहे। वह स्वयं भैंस की गोठ में पड़ी रहेगी पर पति के रहने के लिए एक लिपी-पुति स्वच्छ कोठरी का प्रबन्ध करेगी। स्वयं चाहे मलिन दुर्गन्धित घास में पड़ी रहेगी पर उस के लिए गाँव वालों से चारपाई माँग लावेगी। आप भूखी रहेगी पर रात-दिन मजजदूरी कर के उस के भोजन का प्रबन्ध करेगी। लछमा के साथ उसका विवाह हुआ है, अतः उसे वह जीवन भर न छोड़ेगी। पर वह उसके घर नहीं जा सकती, क्योंकि वहाँ लोग उसे मार डालेंगे और यहाँ उस के माता–पिता–भतीज़ी भूख से अपने आप मर जायेंगे।

सम्बन्धियों ने उस के पति को वहाँ न छोड़ा, क्योंकि उन्हें मर कर जीवित हो जाने वाली मायाविनी बहू की सचाई पर विश्वास नहीं।

लछमा के इस व्यवहार से आस-पास असन्तोष की लहर सी फैल गयी और वह अनेक प्रकार की चर्चा का आधार बनने लगी।

समाज के मनोविज्ञान का जैसा परिचय समतल में मिलता है वैसा ही पर्वत की विषम भूमि में।

एक पुरुष के प्रति अन्याय कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने पर उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पा कर भी सब स्त्रियाँ उस के आकरण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहतीं।

इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र-सी है। वह जितनी ही पहुंच के बाहर होती है पुरुष उतना ही झुँझलाता है और प्रायः यह झुँझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि जो अप्राप्य है उसी को प्राप्त प्रमाणित कर के हमें सन्तोष होता है, जो प्राप्त है उसे प्राप्त प्रमाणित करने की आवशयकता हीं नही रहती।

पर खड़ा हुआ व्यक्ति यदि अपने गिरने की घोषणा सुनते सुनते खड़े होने के प्रयास को व्यर्थ समझने लगे तो आश्चर्य क्या। इसी कारण जब तक स्त्री सवभाव से इतनी शक्तिशालिनी नहीं होती कि मिथ्या पराभव की घोषणा से विचलित न हो तब तक उसकी स्थिति अनिश्चित ही रहती है।

लछमा में मैंने अविचलित रहने की शक्ति भी देखी और बड़े-से बड़ अपकार को क्षमा कर देने की उदारता भी। न वह दूसरों की निन्दा कर के हल्की बनती है और न अपनी सफाई दे कर आत्मविश्वास की न्यूनता प्रकट करती है। उस का दर्पण-जैसा मन स्वयं ही अपनी स्वच्छता का प्रमाण है। एक बार

तो जब एक सज्जन मेरे घर में बैठ कर मुझे लछमा के कल्पित दोष गिना रहे थे तब वह दरवाज़े के बाहर खड़ी हो कर उन्हें छोटे बच्चों की तरह मुँह चिढ़ा रही थी।

गाँव के बुरे-से-बुरे व्यक्ति की भी चर्चा चलते वह सरल भाव से कह देती है, "अपनें आप रहेगा।" उस के स्वनिर्मित शब्दकोश में इसका अर्थ है, 'रहने दो—जैसा करेगा वैसा पावेगा।'

मार्ग में आने वाले सभ्य जब चरनेवाली भैंस और चलाने वाली लछमा के साथ एक-सा उपेक्षा-भरा व्यवहार करते हैं तब भी वह रुष्ट नहीं होती—उलटे उन की सफ़ाई देने लगती है : "हम तो आदमी-जैसे नहीं। वे बहुत अच्छे हैं फिर हम से कैसे बोलें, हम भी नहीं बोलते ; तुम बहुत अच्छा नहीं करते क्योंकि हम से बोलते हो—पर तुम हम से अच्छे बोलते हो इसी से हम तुम को घेरते हैं।" ऐसे टूटे-फूटे वाक्यों में लछमा का जो तात्पर्य छिपा रहता है उसे पूर्णतः समझ लेना चाहे सहज न हो, परन्तु इतना तो समझ में आ हीं जाता है कि उसके लघुता पर संकुचित हृदय में किसी के प्रति कोई दुर्भावना रखने का स्थान नहीं।

मेरे आने का दिन लछमा के लिए बहुत व्यथा-भरा दिन रहता है। भैंस दुह कर वह मेरे यहाँ दौड़ आती हैं। पानी भर कर वह फिर एक चक्कर लगाने चल देती है। बच्चो को रोटी दे कर वह फिर एक फेरी दे जाती है। जैसे-जैसे मेरा सामान बंधता है वैसे-वैसे मानो लछमा के जोड़-जोड़ के बन्धन शिथिल होतें जातें हैं।

एक मील तक मुझे पहुंचाने आने का उसका नियम है। मील का दूसरा पत्थर आते ही जब मैं उसे लौट जान का आदेश देती हूँ, तब वह खोयी-सी खड़ी हुई, बार-बार आँखें पोंछ कर

ष्टि से ही कुछ दूर तक मेरा अनुसरण करती रहती है।

पहाड़ी राह तो हमारे यहाँ की लम्बी-चौड़ी सड़क नहीं है। चार पग चल कर ही कभी दाहिनी ओर मुड़ जाना पड़ता है, कभी बायीं ओर ; कभी कोई पेड़ दृष्टि रोक लेता है, कभी कोई शिला-खन्ड । मेरे दृष्टि से ओझल हो जाने पर भी लछमा का आँसुओं से गीला कण्ठ दूर तक सुनाई देता रहता है : "सँभाल के आना—जल्दी लौटना—अच्छा—अच्छा—"

इन दिनों लछमा के सामने भूखे मरने का प्रश्न नही रहता। सेर के बाग फलों से लदे हुए हैं । पेड़ों के नीचे गिरे कच्चे और खट्टे सेव वहीं सूख या सड़ जाते हैं इसी से कोई उन्हें लेने से नहीं रोकता । आजकल किसी भी पेड़ के नीचे बैठ कर लछमा सेर तीन पाव खट्टे और न खाने योग्य सेव गले के नीचे उतार लेती है और फिर दो-दो दिन तक निराहार काम में लगी रहती है।

पर धीरे-धीरे वह जाड़ा आ रहा है जब धरती के हृदय पर दुःख-भार के सामन तीन-तीन फुट ऊँची बर्फ जम जायगी, जब लोग अपने-अपने घरों में आग तापते हुए पुरानी कथाओं को नये ढंग से कहेंगे, जब कि सम्पन्न और निर्धन अन्न के भरोसे प्रकृति की तरल पर क्रूर क्रीड़ा का उपहास करेंगे, जब कुछ पशु नीचे के गर्म गाँवों की ओर भेज दिये जायेंगे। और कुछ सुखायी हुई घास दे कर गर्म गोड़ों में सुरक्षित रखे जायेंगे। और तब विकलांग बूढ़ों, असमर्थ बालकों तथा अरक्षित पशुओं को ले कर लछमा क्या करेगी ?

मुझे उसका कोई समाचार नहीं मिलता यह सत्य भी है और नहीं भी। वह पढ़ी-लिखी होती तो पत्र लिखने की सुविधा रहती, यह सुन कर लछमा एक विचित्र भाव-भंगिमा के साथ अपनी अटपटी-सी भाषा में उत्तर देती है, "हम तो अपने जसी

चिट्ठी लिख लेते हैं। एक टीले पर बैठ कर सोचते हैं, यह लिखा, वह लिखा यह ठीक लिखा गया, वह लिखना अच्छा नहीं हुआ। फिर जब मन में आता है कि चिट्ठी गयी तब उठ कर खुशी से घास काटते हैं, लकड़ी तोड़ते हैं। क्या हमारा लिखा नहीं पहुंचता?"

कागज़, कलम, स्याही और अक्षरों से शून्य तथा पोस्ट आफिस की सहायता से बिना भेजी गयी चिट्ठी की बात सुन कर किसे हँसी नहीं आयेगी।

पर जब सर्दियों में मैं अचानक ही यहाँ के गर्म कमरे को छोड़ कर उस हिम से मूर्च्छित पर्वत की ओर जाने को उद्यत हो जाती हूँ, गर्मियों में सभ्य समारोह से मुखरित पर्वतीय सौन्दर्य का निरादर कर, उस व्यथा से नीरव हिमानी के कोने में पहुंचने के लिए विकल हो उठती हूँ तब मुझे निरक्षर लछमा की चिट्ठी नहीं मिलती, यह कौन कह सकता है?

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

(जन्म सन् १९१०)

मूल जालन्धर निवासी 'अश्क' जी ने शिक्षा वहाँ और लाहौर में पायी; बी० ए० एल० एल० बी० कर के कुछ दिन अध्यापन किया पर फिर छोड़ कर लाहौर आ गये। कुछ समय तक रेडियो विभाग में और तीन-एक वर्ष फिल्म उद्योग में बम्बई में भी बिता चुके हैं।

'अश्क' ने पहले उर्दू में लिखना आरम्भ किया था, उस उर्दू का प्रभाव उन की भाषा और शैली पर अब भी है। भाषा चुस्त और प्रवाह-मयी होती है और चित्र खरे-निखरे। 'अश्क' सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण के पचड़े में नहीं पड़ते, किन्तु चरित्र-चित्रण में कुशल हैं। कहानियों के सूत्र अपने आस-पास के जीवन की परिस्थितियों और वातावरण में ही निहित होते हैं, और अधिकतर पात्र किसी-न-किसी यथार्थ व्यक्ति पर ही आधारित होते हैं। उन के चरित्र-निर्णय में उदारता कम होती है और बहुधा पात्रों का वह व्यंग्य या विद्रूप चित्र भी प्रस्तुत करते हैं, यों वह यथार्थ पर बल अधिक देते हैं।

'अश्क' कहानी लेखक के अलावा सफल उपन्यासकार भी हैं और नाटककार भी।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

ज्ञानी

मेरे पड़ोसी सरदार करतार सिंह ज्ञानी पुरुष थे। पढ़े हुए तो वह जैसे कि पंजाबी भाषा की कहावत है 'मात्र दहलीज' ही तक थे अर्थात् शिक्षा के विशाल भवन की चौखट के अन्दर जाना भी उन्हें नसीब न हुआ था, पर जैसे कि वह सदा आप ही कहा करते थे, उन की अन्तर की आँखें खुली थीं और 'पढ़े' हुए होने की अपेक्षा वे 'गुढ़े' हुए अधिक थे।

कोई बड़ी जमीन-जायदाद उन के पास न थी। एक हल की छोटी-सी खेती थी, पर वह सन्तुष्ट थे। उन के अपने कथनानुसार ज्ञान की दौलत से 'वाहेगुरु' ने उन्हें मालामाल कर रखा था। "धन दौलत तो माया है—बनेरे का काग," वह कहते, "आज हमारी मुंडेर पर कल दूसरे की; सच्ची दौलत तो सत् नाम की है। जिस के पास वह दौलत है, उसे किसी और धन-सम्पति की आवश्यकता है न आकांक्षा।"

गाँव में मेरी कपड़े की एक छोटी-सी दुकान थी। कारबार में थोड़े बहुत लाभ की आशा न हो तो कारबार ही क्या और ज्ञानी जी इस थोड़े से लाभ को 'लूट' का नाम देते थे। फिर मैं उधार भी कम देता था-और उन्हें शिकायत थी कि मैं माया-

मोह में फँसा हुआ हूँ, दिन-रात धन कमाने की चिन्ता मुझे सताती है।

मुझे प्रायः उपदेश भी दिया करते, कहा करते कि तुम लखपति भी क्यों न हो जाओ, यदि सत् नाम की दौलत तुम्हारे पास न हुई तो तुम कंगाल-के-कंगाल ही रहोगे। "तुम चाहते हो कि सब दौलत तुम्हारी तिजोरी में आ रहे, लाला," वह मुझ से कहते, "परन्तु जिस के पास सत् नाम का धन है, वह चाहता है कि अपनी उस सम्पत्ति को सब में बाँटें।"

तभी पंजाब की बाँट के फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे की प्रति क्षण फैलती हुई आग हमारे गाँव तक आ पहुंची। पश्चिमीय पंजाब में निरीह सिक्ख स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों पर तोड़े जाने वाले अत्याचारों की खबरों ने इस आग पर तेल का काम किया और एक सुबह गाँव के सिक्ख लाठियों, कुल्हाड़ों गंडासों और छवियों से लैस हो कर मुसलमानों पर पिल पड़े और फिर उस हत्याकांड और लूट-मार की पुनरावृत्ति हमारे गाँव में भी हुई जिस की खबरें दूसरे गाँवों से आती थीं।

मैं अपने घर की छत पर बैठा ज्ञानी जी की बातों पर विचार कर रहा था: "जब सब को एक दिन मरना है, जब धन दौलत चलती-फिरती छाया है, जब मनुष्य सब कुछ यहीं छोड़ कर खाली हाथ यहाँ से जायगा, तो यह लूट-मार, क़त्ल, गारतगरी क्यों? जब लोग दूसरों को मारते हैं तो अपनी मौत क्यों भूल जाते हैं? जब वे दूसरों का धन लूटते हैं तो क्यों भूल जाते हैं कि यह सब यहीं रह जायगा।" ये सब ज्ञानी जी के शब्द थे। इस हत्याकांड से पहले उन की सत्यता मुझ पर यों प्रकट न हुई थी।

जब गाँव में प्रतिहिंसा से पागल हिन्दू-सिक्खों की मार-धाड़ और निर्दोष मुसलमान स्त्री-बच्चों की चीख–पुकार मची

हुई थी, ज्ञानी जी का एक-एक शब्द मेरे कानों में गूँज रहा था।

तभी मैंने देखा, ज्ञानी जी भी कन्धे पर एक हल रखे और हाथ में नूरदीन की दोधार गाय की रस्सी थामे चले आ रहे हैं। दोनों के पीछे निरीह बछड़ा इस सारे हत्याकांड से अनभिज्ञ कुदक्कड़ मारता चला आ रहा था।

नूरदीन की गाय गाँव भर में प्रसिद्ध थी। दूध सी-श्वेत, पाँच सवा पाँच फुट ऊँची, भरी-पूरी और जवान! दूर ही से मैंने पहचान लिया। जब सरदार जी समीप आये तो मैं न रह सका। छत पर ही से मैंने पूछा, "ज्ञानी जी आप भी!"

दार्शनिकों के से अन्दाज में ज्ञानी जी ने कहा, "अभी लाला हम न लाते तो कोई और ले जाता। यहाँ हमारा क्या है, सब 'वाहे गुरु' का है। इस का दूध भक्तों के काम आयेगा।"

यह कह कर वह घर के अन्दर चले गये और फिर जब बाहर निकले तो उन के हाथ मे मोटा ताला था जो वर्षों से बेकार पड़े-पड़े जंगा गया था। तेल उस में डाल कर बड़ी कठिनाई से उन्होंने उसे चलता किया और उसे दरवाजे पर लगा कर वह फिर चले गये।

इस के बाद उन्होंने कभी मुझे उपदेश नहीं दिया, बल्कि मुझे भी 'वाहे गुरु' के भक्तों में शामिल कर लिया, क्योंकि दूसरे ही दिन वह छाछ का लोटा और दही का छन्ना भर कर मेरे घर पर दे गये।

होमवती

(जन्म सन् १९०६-१९५०)

मेरठ के प्रसिद्ध 'पत्थर वालों' के कुल में जन्म लेकर होमवती ने घर ही में शिक्षा पायी। प्रखर-बुद्धि और अध्यवसायी वह थी हीं, अकाल वैधव्य और कौटुम्बिक उपेक्षा ने उन की सहज प्रतिभा को और प्रोत्साहन दिया, और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह लेखिका के रूप में प्रकाश में आयीं। उन का जीवन कठोर साधना ही में बीता।

भावना से कवि, और अनुभव से व्यवस्था प्रिय, होमवती जी की कहानियों में दोनों प्रवृतियों का समन्वय है। एक ओर भावुक संवेदना, सहज प्रवाहित होने वाली करूणा और वात्सल्य, दूसरी ओर निष्ठा और स्वाभिमान और मर्यादाओं का निर्वाहः ये गुण उन की कहानियों में लक्ष्य हैं। उन की कला आसपास के जीवन का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करती हुई, बनावट को अस्वीकार करती और दीन दुःखियों को सहज आत्मीयता के घेरे में लेती हुई चलती है। उन के चरित्र परिस्थितियों के ठुकराय हुए और अंतर्द्वन्द्व से पीड़ित होते हैं, साधारण गृहस्थ जीवन की घटना-वस्तु, घरेलू वातावरण, चित्रण सुथरा और कथन की शैली अकृत्रिम और मर्मस्पर्शी।

होमवती जी के चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुए : 'निसर्ग', 'धरोहर' 'स्वप्न भंग', और 'अपना घर'।

होमवती

स्वाभिमानिनी

नली की बनी हुई टोकरी में बहुत साफ धुनी हुई रुई और कोई डेढ़ बालिश्त लम्बा तथा पतला-सा सरकंडे का टुकड़ा ले कर वह बकुल वृक्ष के नीचे धूप में जा बैठी—शायद पूनियाँ बनाने के अभिप्राय से, क्योंकि आज अमावस्या होने के कारण सूत तो कातना नहीं था। आज के दिन चर्खा चलाने का निषेध वह अब तक सुनती आ रही थी। थोड़ी दर में दृष्टि और शक्ति के अभाव में छोटी-सी लाठी टेकती हुई वृद्धा सास भी वहीं आ कर खटोले पर पड़ गयी थी, जिसे बुढ़ापे की एक-मात्र अवलम्ब अनाथ और वैधव्य की पीड़ाओं के भार से लदी हुई बहू ने पहिले ही से उसके लिए बिछा रखा था।

बायें हाथ की हथेली पर थोड़ी सुर्ती और चूना रख कर वृद्धा दाहिने हाथ के अंगूठे से उसे रगड़ती हुई बोली, "आज चार दिन अठवाड़े से ज्यादा हो गये बहू, वह अब भी नहीं आया। वह तो हर आठवें दिन—इतवार के इतवार सूत ले जाया करता है, पर—"

"हूँ—कोई काम लग गया होगा, अम्मा।" बहूने जल्दी से बात खत्म कर डालने के अभिप्राय से बीच ही में बात काट कर कहा

परन्तु यदि वृद्धा के माथे का आँखें पहली [illegible] ोतीं, तो वह अपनी इस दुखिया बहू की बेचैनी उस का चेंहरा देख कर साफ समझ जाती और शायद इस बात को यहीं समाप्त कर डालती, लेकिन अनजान की भाँति मुँह में सुर्ती डाल कर वह फिर कह उठी, "कहीं बीमार न पड़ गया हो । उस के पीछे दोनों जून भर-पेट रोटी मिल जाती है। जो कहीं महीने दो महीने न आया, त इस के भी लाले पड़ जायेंगे । दूसरे लोगों के हाथ सूत देने में कुछ वैसा सहारा थोड़े ही लगता है, और तू जरा–सी लड़की क्या समझेगी कि लोग गरीबों के साथ भी छल–फरेब करने से नहीं चूकते । अब गँवई-गाँव के लोग दया धम को नहीं समझते बेटी ! बड़े सयाने हो गये हैं ।"

"ऊँह अम्मा ! जाने भी दो ; रोटी न मिलेगी, तो प्राण ही तो निकल जायें न, और क्या होने को है ? जीवन का भार ढोते–ढोते मन थका सा जा रहा है...न जाने सब की उम्र कट-कट कर हमारी उम्र कितनी बढ़ती जाती है, दिन बीतते ही नहीं मालूम होते । जब अपने ही सब छोड़-छोड़ कर चले गये तब बिरानों की क्या आशा ? कौन किस का होता है ?"

"ना—सो बात नहीं है, बहू ! उस का ही कौन बैठा है ? तभी तो कहती हूँ कि कहीं बीमार न पड़ गया हो, ठंड क्या थोड़ी पड़ रही है ?"

युवती ने बँटी हुई पनियाँ और बाकी बची हुई रुई एक ओर सरका दी, और खड़े हो कर जहाँ तक दृष्टि पहुँच सकी, वहाँ तक आँखें फैला कर शहर से आने वाली बटिया की लम्बाई नापने लगी । थोड़ी देर में कोई आता हुआ दीख पड़ा, लेकिन यह तो पड़ोस का तेली सिर पर खली का भार लादे लौटा आ रहा है । आज पास के गाँव में बाज़ार लगा था कि नहीं, वहीं से आ रहा होगा । खली के दाम ठीक न लगे होंगे ।

युवती ने सारी बातें मन-ही मन-सोच कर चाहा कि सास से कहे, "इस से पूछ देखो, शायद पता चल जाय" पर हिम्मत न हुई। धीरें-धीरे सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा। पूनियाँ सब बटी जा चुकी थीं। चपला ने सास का खटोला घर में ले जा कर डाल दिया, और स्वयं डोल रस्सी उठा कर पानी भरने चल दी।

: २ :

कुएँ में डोल डाल और पैर से रस्सी दबा वह सिर का आँचल ठीक करने लगी, तभी उमराव तम्वोली की लड़की ने अपनी भौजाई की ओर कनखियों से देख कर चपला से पूछा, "आज तुम्हारे घर यह गोरा-गोरा छोकरा कहाँ से आया है— अपने को वामन बतला रहा था? जान पड़ता है, कोई नातेदारा खबर-सुध लेने आया होगा। तुम्हारे घर का पता पूछ रहा था, मैंने ही बतलाया है।"

"ऐं—हमारे घर कौन आयेगा, सुनिया जीजी। ब्राह्मणों के और घर भी तो इस गाँव में हैं, कहीं और आया होगा। खबर-सुध लेने वाला कौन बैठा है? यहाँ चारों भाई खत्म ही हो चुके, जिठानी मैके चली गयीं, यहाँ भी कोई नहीं बचा, मौत ने नव के मान मार दिये...एक चाची बची हैं, सो पता नहीं, मरती हैं या जीती हैं।"

"ले भाभी। इस म भी कोई बुरा मानने की बात है, लगीं चार बातें बताने। तेरे घर न सही, हमारे घर आया सही—— लो भइया। बाप रे, लड़ने को सीधी हो गयी।" कहती हुई सुनिया जीजी बगल में मिट्टी का घड़ा दबा कर भावज से पहले ही कुएँ से नीचे उतर आयीं।

चपला से एक शब्द भी कह नते वना। उस की आँखों में आंसू भर आये। एक ठंडी सांस ले कर कुएँ से डोल खींच

और मन ही मन भाग्य को कोसती हुई घर की ओर चल दी। हे भगवान, अपनों के बिना ऐसी मिट्टी खराब होती है। मैंने इन से एक बात भी नहीं कही और उल्टी चार बातें सुन लीं। जिस के ऊपर कोई न हो, वह सब की सुनने सहने योग्य ही बन जाता है।

घर आकर रस्सी को खूँटी पर डाल दिया और डोल पलेंहड़ी में रख कर वह लोटा भर पानी सास को देने चली, तभी सुना, वह धीरे-धीरे कुछ कह रही हैं। "आज चार दिन से बाट देखते-देखते आँखें तिर गयीं बेटा। मैं तो पहले ही जानती थी कि हो न हो बीमार पड़ गया, नहीं तो ज़रूर आता भइया बड़ा नेक लड़का है। बोलता, है तब मुँह से फूल झड़ते हैं... मानो मेरा मोहन ही लौट आया हो।" सास की बात सुन कर चपला का सर्वांग काँप उठा, पर वह कहती ही गयी...'इस के पीछे दो रोटी खाने को मिल जाती हैं। बहू मुँह से कुछ नही कहती तो क्या, मैं समझती नहीं ? बेटा, सोच-सोच में आधी हुई जाती है। जैसे-तैसे मर-खप कर चार आने की कताई कर पाती है, फिर घर का काम, मेरे बस का तो कुछ रहा नहीं। कह देना जो सूत इकट्ठा हुआ धरा है—"

"हाँ-हाँ, माँजी। वह दों-एक दिन में आयेंगे ही। सूत न हो मझे दे दो...कमज़ोर बहुत हो गये हैं...रात–दिन चर्खा संघ में जान लड़ाये रहते है...दो-दो बजे तक रोटीं लिये बैठा रहता हूँ।"

"हाँ भइया। उसे तो देस भगती की धुन सवार है...सूत तू कहाँ लादे फिरेगा...वह ताँगा ले कर आयेगा ही, पैदल मत आने देना—बीमारी से उठा है...तू कुछ खा ले।"

"माँजी, वह तुम्हारे यहाँ की गुड़धानी को बड़ी याद करते हैं, बड़े भोले हैं माँ। कभी मुझ से नराज़ नहीं होते,

मालिक तो सभी को मिले। अच्छा, तो मैं अब जाऊँ...परसों वह शायद ज़रूर आवेंगे।" कह कर लड़का उठ गया। वृद्धा ने थोड़ी गुड़धानी बहू से मंगा कर उस के पल्ले में बाँध दी। और फिर लोटा भर पानी पी कर एक सन्तोष की साँस ले वह चारपाई पर लेट रही। चपला अपने सुलगते हुए मन को शान्त करने के अभिप्राय से चल्हे में आग जलाने बैठ गयी, और मन की समस्त पीड़ा को एक ही फूँक में उड़ा देने का प्रयत्न करती हुई चूल्हे में आग जलाने लगी।

: ३ :

देवव्रत दालान में खड़ा-खड़ा सुनता रहा। चपला अपनी सास से कह रही थी, "अम्मा! अब की वह आवें, तो मना कर देना कि यहाँ न आया करें। जीते जी कलंक का टीका मुझ से अपने माथे पर न लगवाया जायगा। तुम तो घर में बैठी रहती हो, अम्मा। पर कुएँ-घाट पर मुझे जैसी-जैसी सुननी पड़ती है, बस भगवान ही ज़ानते हैं। सूत तो आखिर बहुतों के घर से इकट्ठा कर के ले जाते हैं, पर तुम्हारी ममता के कारण दो घूँट पानी कहीं और न पी कर इसी घर में मुट्ठी-भर चना-चिउड़ा मुँह में डाल लेते हैं, यही मुहल्ले-टोले के लोगों से सहा नहीं जाता। तभी तो तेली-तम्बोली तक जो मुँह में आया कह डालते हैं। मुझ से यह सब नहीं सहा जायगा भैया।"

वृद्धा ने ठंडी साँस भर कर कहा; "सो नहीं, बेटी। सहने-सुनने के लायक तो भगवान ने तभी बना दिया, जब घर के मनख मर गये, अब क्या सहना-सुनना है, मेरी चन्दा। दो जून भर-पेट रोटी मिल जाती है, यही किसी को नहीं सुहाता। तू मानती ही नहीं—कितनी बार देवव्रत ने कहा कि 'अब गाँव में कौन बैठा है; चलो यहाँ से, मेरे घर रहना। मुझे भी भर पेट खाना मिल जाया करेगा।" नौकर-चाकर क्या कोई वैसी ममता

से थोड़े ही खिलाते-पिलाते हैं। उसे भगवान् ने चार पैसे दिये हैं। घर का मकान रहने को है। दो रोटियाँ हमें मिल ही जायेंगी...यहाँ भी मेहनत कर के खाते हैं, वहाँ भी मेहनत कर खायेंगे। फिर वह कोई गैर भी तो नहीं, मोहन के साथ का पढ़ा-लिखा है। उस की इस की तो दाँतकाटी रोटी तेरे व्याह के पहले से थी।"

युवती ने आँटी का सूत सुलझाते हुए कहा, "सो सब ठीक है, अम्मा। हर तुम जल्दी ही बात भूल जाती हो। देखो, तुम्हें याद नहीं, जब वह मरे थे, तब गाँव में कैसा भारी प्लेग फैला था, अपनी कोई खबर भी लेने वाला नहीं था। तब मैंने एक दिन इन से कहलाया था कि यहाँ रहते तो बड़ा डर लगता है, न हो थोड़े दिन के लिए किसी दूसरी जगह जा कर रह लेते। पर उन्होंने बहुत सोच कर जवाब दिया था, 'रहने के लिए तो मेरा ही घर पड़ा है; लेकिन सोच लो! समाज का मुँह बन्द करने की सामार्थ किस में है?' फिर बताओ अब कैसे किसी के घर जा कर रहा जा सकता है? अब तो अकेले रहने की आदत भी पड़ गयी और फिर समाज जो पहले था, अब भी है; गरीब और अनाथ को अपना कर कोई आश्रय दे, यह बात समाज सहन न कर सकेगा, अम्मा। जब तक मेहनत मजदूरी हो सकेगी, करते रहेंगे; आगे जैसे भगवान् दिन बितायेगा, बीत ही जायेंगे।" कहती हुई चपला सूत तोलने के अभिप्राय से जैसे ही दालान में खूँटी पर लटकी हुई तराजू लेने निकली वैसे ही वेदव्रत को देख कर सहम-सी गयी। उस में वापिस लौट जाने तक की सामर्थ न रही और माथा थाम कर वहीं बैठ गयी।

युवक ने थोड़ा आगे आ कर कहा, "घबराओ नहीं चपला। गाँव के नाते में तुम मेरी बहन लगती हो, और मोहन के नाते से भी मैं उस से कुछ दिन बड़ा ही हूँ; यदि तुम्हारा नाम लूँ तो

बुरा न मानना। आज तक यही सोचता रहा कि तुम को क्या कहूँ? खैर, यह सब जो तुम अभी-अभी अम्मा से कह रही थीं, अक्षर अक्षर ठीक है। तुम जितना कृतघ्न मुझे समझो, वह भी ठीक है; पर तुमने जो बात एक बार मुझ से कहलायी थी, उस का न मानना आज तक अकेले को खा रहा है, वह मेरी भूल ही थी। जवानी जल्दी में हो जाया करती है, लेकिन उस का कभी सुधार न हो, यह तो कभी सुना नहीं। आज तुम से अपने मन की बात कहता हूँ, उपहास न करना। उन्हीं दिनों तुम्हारी बहन का स्वर्गवास हो जाने के कारण लोग-बाग दूसरे विवाह के लिए जान खा रहे थे। मैं आजन्म अकेले ही रहने का प्रण कर चुका था, इसी से असमंजस में पड़ गया, पर फिर भी वह मेरी भारी भूल थी। लेकिन क्या अब उस का कोई प्रतिकार नहीं हो सकता, चन्दा!" ...

रूपवती ने थोड़ा साहस बटोर कर कहा, "यहाँ अकेले में नहीं... आओ, अम्मा के पास आ कर बैठो। मैं जो कुछ कह रही थी, क्या वह झूठ था? हम लोग तो केवल बड़े आदमी के घर की दासी ठहरीं; मालकिन तो मर ही चुकी थी, उस का दुःख कुछ कम न था, उसका स्थान तो उन के लिए ही था... नौकर-चाकर रखने से तो कोई बुराई नहीं होती न? यहाँ भी तुम्हारा दिया खाते हैं, वहाँ भी खाते। पर अब तो यही घर खा रहा है, अकेले-अकेले भी ऐसा बुरा नहीं लगता।" कहती हुई चन्दा कल के बरतनों के अन्दर से और पानी लेने चली गयी। लौट कर देखा, तो देवव्रत माँ की गोद में पड़ा बच्चों की भाँति फूट-फूट कर रो रहा था। बुढ़िया की आँखों में आँसू बहाने की सामर्थ्य न रह गयी थी। फिर भी चन्दा से यह बात छिपी न रह सकी कि उस की लाल की छाती फटी जा रही है।

लड़के को थोड़ा शान्त कर के गोद से देवव्रत के सिर पर

हाथ फेरते-फेरते कहा, "बेटा, तने मुझ अपनों का अभाव एक दिन भी न खटकने दिया। मैं क्या जानती नहीं कि बीमारी-हारी में एक अपने के बिना घूँट-भर पानी देने वाले की कमी कैसी अखरती है, पर करूँ क्या ? अपनी कोई लड़की होती, तो आज तेरे साथ कर देती। पर इस बहू को क्या करूँ ? मुझे तो यही चिन्ता खाये जाती है कि इस का बेड़ा कैसे पार लगेगा, मेरी आँख मिच जाने पर इसे कौन देखे-सुनेगा ? अभी उमर क्या है ? दुनिया वैसे ही चैन नहीं लेने देती।"

वेदव्रत ने सिर उठा कर देखा, चपला खड़ी है और उस की पलकें भीग रही हैं। वृद्धा से बोला, "अम्मा, लड़कियों की तो कोई कमी नहीं; पर देश के लाखों स्त्री-पुरुषों के हाहाकार को सुनते हुए विवाह रुचता ही कैसे ? पर सुना है कि मरने के बाद दो-चार दिन के लिए ऐसे की जरूरत होती है, जो एक जगह बैठ कर रोता रहे, सो उस संस्कार के लिए तुम लोग हो ही; जैसे बन पड़े——"

"पर जैसा कि अभी-अभी मैंने देखा है, उस से तो जान पड़ता है कि वह संस्कार भी आप भली प्रकार पूरा कर सकेंगे।" कह कर चपला ज़रा हँस दी, और बाजरे के अंदरसों की थाली वेदव्रत की ओर बढ़ा कर उसने कहा, "पहले यह संस्कार भी तो करना ही पड़ेगा, तब मरने-जीने की बात अच्छी तरह सोची जा सकेगी।"

युवक ने थाली पकड़ते हुए कहा, "अम्मा ! आओ, आज हम-तुम साथ-साथ खायें।"

"अरे, तू मोहन की एक बात भी नहीं छोड़ेगा क्या ?" कह कर वृद्धा रो पड़ी। युवती ने भी मुँह फेर कर आँचल के छोर से आँखें मसल डालीं। जीवन के सूने क्षणों में शायद दो-चार अश्रुकण ही मनुष्य के प्रति सच्ची सहानुभूति दिखला जाते हैं।

: ४ :

जिस समय सास-बहू ने वेदव्रत की गिरफ्तारी का समाचार सुना था, ऐसा लगा कि मानो प्राण ही निकल जायेंगे। चपला तो खून का घूँट-जैसा पी कर चुप रह गयी ; परन्तु बुढ़िया के समस्त अंगों की शक्ति मानो उस की जबान में ही आ गयी ; वह चुप न रह सकी, बोली, "बहू, अब क्या होगा ? मेरी ज़िन्दगी का क्या ठिकाना ? किनारे पर बैठी हूँ । तेरा क्या होगा ? सोचा था, वह भी अपना ही लड़का है, उस के सहारे से तेरे दिन कट जायेंगे, और तो कोई दिखाता नहीं, वह भी अब छोड़ कर चला गया !"

बहू ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया, मानो वह सब-कुछ सहने के लिए तैयार बैठी है । यह बात तो रही अब से छः महीने पहले की । अब छः मास बीत जाने पर गौरा ने भी यह भली भाँति जान लिया है कि उस का जीवन वैसा छोटा नहीं जान पड़ता और न एक दिन भी खाने के ही लाले पड़े । जिस छोटे लड़के दीनू को वेदव्रत उन लोगों की देख-रेख के लिए कभी-कभी भेजा करता, उसी के साथ जुड़ा हुआ सूत ले कर चपला हर आठवें दिन पैंठ में जाने लगी । वृद्धा ने बहू को बहुत समझाया, कितनी ही बार कुल की आन का हवाला दे-दे कर उस की भर्त्सना भी की; परन्तु उसे आश्चर्य था कि उस की बहू इस प्रकार हाथों से क्यों कर निकल गयी...जब कि वह अच्छी तरह बोलना भी नहीं जानती थी । चपला ने अपना तन और मन दोनों ही चर्खे की भेंट चढ़ा दिये । वह दूने उत्साह से रात-दिन एक कर के सूत कात-कात कर इकट्ठा कर लेती । गाँव वालों ने चर्चा की, और चुप हो रहे । बुढ़िया से शिकायतें की । वह भी बहू से कुछ उदासीन-सी हो उठी ; पर चपला ने मानो संसार की उपेक्षा कर के अपने जीवन का भार अपने ही माथे लाद

लेने की ठान ली थी। उसने सोचा, दुनिया में चैन किसी प्रकार भी नहीं। बेखूँ, अकेले-अकेले भी इस भार को उठा सकती हूँ या यही।

पैंठ के दिन जब वह सूत ले कर चली, तब आकाश में काले-काले मेघों ने उमड़ कर अँधेरा-सा कर दिया। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की चमक से कान और आँख दोनों बकार हुए जाते थे। युवती ने एक बार मन ही मन सोचा, आज तो जाना ठीक नहीं मालूम पड़ता। दीनू भी नहीं आया; पर उस मुहल्ले की रामी गरनी के साथ ही जाने में क्या हर्ज है। अगर खुला हुआ दिन रहता तो...वह खड़ी-खड़ी यह सब सोच ही रही थी। गौरा ने सुरती का बटुआ खोलते हुए पूछा, "आज बाज़ार करने न जाओगी क्या? डोल-रस्सी टूटी पड़ी है...कल कहती न थी कि दूसरे के डोल से पानी भरा है। सन आ जाय, तो किसी से रस्सी बँटा ली जाती। अब कोई रुकावट तो रही नहीं कि घर से बाहर पाँव नहीं दिया जायगा।"

युवती ने मौन रह कर सब सुना। उसकी आँखो में आँसू भर आये। क्या अम्मा उस की ओर से इतनी विरक्त हो उठीं? दूसरे दिन भी किसी के डोल से पानी भरा जा सकता है। फिर "जा रही हूँ।" कह कर वह चल दी।

थोड़ी देर बाद घर-आँगन में जल ही जल हो गया। जैसे आज बरस कर फिर न बुरसेगा। बुढ़िया कलेजा थाम कर रह गयी, "हे भगवान्! उस का क्या होगा? मैंने जाने ही क्यों दिया, पर वह मानती ही कब? कई घंटों के बाद रामी गड़रनी ने सीकों का गट्ठा दालान में धम्म से पटक दिया, गौरा चौंक पड़ी—"कौन?"

"मैं हूँ चाची, रामी। आज क्या बाज़ार थोड़े लगता; पर

रूठ कर के बहू मुझे साथ ले गयी । देखो न क्या हाल होकर आयी है...घर पकड़ना दूभर हो गया, सिर से पाँव तक पानी में डूबी पड़ी है। मैं तो सिर पर गट्ठा धरे थी, तो सिर तब भी कुछ बच गया, और इसे तो अपने सत की ही चिन्ता खाती रही।"

"फिर गयी ही क्यों थी ?'

"तुमने रोका भी नहीं चाची !"

"मेरा कहा वह अब नहीं मानती, बेटी। आ तू ताप ले न—" कह कर बुढ़िया ने दहकती हुई अँगीठी उस की ओर सरका दी। फिर भी माघ के महींने की सर्दी में कपड़ों से रामी की देह काँप रही थीं, "अब जाऊँ चाची। कपड़े भींग रहे हैं।" कह कर वह उठ खड़ी हुई । चपला ने भी कुछ न कहा। वह चुपचाप कपड़े बदल कर खाट पर जा पड़ी। उसी दिन रात को उसे खूब जोर का बुखार चढ़ा, और छाती के दर्द ने तो उसे अधमरी-सी ही कर दिया । गोरा नें कई बार कहा, "गुड़ डाल कर थोड़ा सठों का पानी ही पका कर पी ले ।" पर उस में इतनी सामर्थ हो तब न ?

: ५ :

,'अरे, इस घर में अब कोई रहता भी है, या नहीं ?

"कौन है रे ?" वृद्धा ने उत्सुक हो कर पूछा ।

"मैं हूँ अम्मा, वेद ।"

"हाँ—वेद तू आ गया मुन्ना । ऐसे बखत में तू कहाँ से आ गया ? बहू तो जीवन की घड़ियाँ गिन रही है। मेरा तो घर ही उजड़ा जा रहा है, बेटा। न कभी दुखिया ने जी भर खाया, न पहना । सदा हड्डे ही पेलती रही, भरी जवानी में पटक कर चला गया । आज दस दिन हो गये कलेजे के दर्द में मछली की तरह तड़पते-तड़पते। कहना मानती नहीं। जिस दिन से तू

जेल गया, आठवें दिन से आप ही सूत बेचने जाती रही। उस दिन इतने ज़ोर का पानी पड़ा कि सब कहते हैं, जल-थल एक हो गया। बस, उसी दिन से भीग कर खाट पर पड़ी है। कोई खबर लेने वाला भी नहीं।" वृद्धा एक साँस में कलेजे के फफोले चीर-चीर कर सब कह गयी।

वेद पत्थर की मूर्ति बना खड़ खड़ा सुनता रहा। फिर धीरे-धीरे घर मे जा कर देखा, वह औंधे–मुँह छाती दबाये खाट पर पड़ी है। युवक ने उस के अत्यन्त निकट जा कर धीरे-से कहा—"कैसा जी है, चपला ?"

"अब तो अच्छा ही है—चलो, अच्छा हुआ, जो आ गये; नहीं तो मेरी इन अन्धी माँ के बुढ़ापे की लकड़ी कौन थामता ? अचानक जेल जाने की सुन कर मुझे तो यही बड़ी चिन्ता हो गयी थी।"

"ऐसा क्यों सोचती हो, चपला ? यहाँ पर बिना दवा-दारू के पड़ी रहीं, तो क्या शहरों में हकीम-डाक्टरों की कुछ कमी है ? जेल जाने की क्या बताऊँ ? हम लोगों का जीवन तो हर समय हथेली पर रहता ही है, न जाने कब असहयोग की आग में कूद जाना पड़े। किन्तु वहाँ क्या एक दिन भी चैन से कट सका...।फिर यह तो नहीं सोचा था कि तुम्हारी यह दशा हो जायेगी। अपने-आप सूत बेचने की जरूरत ही क्या थी ? खर्च वर्च के बारे में तो दीनानाथ से कह दिया था—"

"हाँ सो, तो सब ठीक था; पर जब हाथ-पैर चलते हैं, ऐसा करने की जरूरत ही क्या ?"

"पर वहाँ बाज़ार में जाना क्या ठीक समझा था ?"

"क्यों, जिन के कोई नहीं होता, उन्हें किस की लाज ?"

"हाँ, यह तो ठीक है; अपने तो अब लौट कर नहीं आ सकते, फिर और कोई भी नहीं, किन्तु मोहल्ले-टोले के भी

कभी काम आ ही जाते हैं। इस में क्या झूठ थोड़े ही है कि अपना तो तुम्हारे अब कोई भी नहीं रहा।"

"बुरा न मानो, मैंने तुम्हें गाली नहीं दी .... कहने का मतलब यह था कि तुम भी तो यहाँ नहीं थे।"

युवक चकित हो कर युवती की ओर देखने लगा, आज से पहले तो चपला ने एक शब्द भी उस के सामन मुँह से नही निकाला था। आज ही यह मेरे इतन निकट क्यों जान पड़ती है। भगवान्, क्या होगा ? वेदव्रत को ऐसा लगा, मानो वह कोई भयानक अपराध करने पर तुला है। आकाश-पाताल काँपते-से दीख पड़े...मानो उसे कोई दण्ड देना चाहता है। इसी अवस्था में उस ने काँपते हुए हाथों से युवती का माथा छू दिया...इतना ठंडा—उफ् ! जैसे हाथ पर वर्फ रख दी गयी हो। वह घबरा उठा..."ओह। जल्दी से ताँगा जुड़वाऊँ। चपला, अब तुम्हें यहाँ नहीं छोड़ूँगा। जैसे तुम कहोगी, वही करूँगा। दो पैसे की औषधि दे कर तो मन का निकाल लूँ।"

पर युवती के अंग शिथिल होते जा रहे थे। वड़े कष्ट से उस ने वेदव्रत के चादरे का छोर अपनी ओर खींच कर कहा, "नहीं, व्यर्थ की चेष्टाएँ अब मत करो। यह मेरे ससुर ली देहली है, यहीं से एक दिन सुहाग चढ़ा था, यहीं उतर गया। अब इसी घर में मुझे सुख की नींद सो जाने दो। बहुत दिन पहले एक दिन इस घर में अचानक ही डर गयी थी, तब यहाँ से भाग जाना चाहती थी, पर अब मुझे इस घर से वड़ी ममता हो गयी है, क्योंकि इसी घर के कोने में अनेक बार मुँह गड़ा कर रो भी लों और कभी-कभी हँस भी पडी, किसी ने कभी दखल न दिया। इस के सिवा और गति भी कहाँ थी ?"

युवक ने आँखों के आँसू पोंछ कर कहा, "चपला, मैं संसार से स्वयं ही ठुकराया हुआ हूँ, हृदय में अब अधिक कुछ सहने

की शक्ति नहीं रही। मुझे क्षमा कर दो। स्वाभिमान की भी आखिर कोई सीमा होती है।"

पर इस समय उधर से कोई उत्तर न पा कर वेदव्रत ने अपना माथा पीट डाला। गौरा गिरती-पड़ती आ कर बोली, "क्या हाल है बेटा ?"

"अरे अम्मा। हमें तुम्हें धूल में मिला कर वह तो ऐसी रूठ गयीं कि अब मुँह से बोलतीं भी नहीं।"

सत्यवती मलिक

[जन्म सन् १९०६]

कश्मीर में जन्म ले कर शिक्षा वहीं पायी ; वहीं से रमणीक प्राकृतिक स्थलों का प्रेम पाया जो उन के लेखन में उमड़ आता है ।

सत्यवती जी की कहानियां अधिकतर रेख-चित्र के ढंग की होती हैं । इन में उन की परिष्कृत रुचि और एक संयत वात्सल्य प्रतिबिम्बत होता हैं । देशाटन-प्रिय हो कर भी अपनी बाल्य क्रीड़ा भूमि कश्मीर का सौन्दर्य उन्हें बराबर आकृष्ट करता रहता ह और उन की कहानियों के पात्र भी प्रायः अपने सहज परिचित और प्रिय-वातावरण से उन्मूलित पहाड़ी-पहाड़िनें ही होती हैं ; कभी-कभी वैसे ही तरसते हुए इतर प्राणी भीं —हरिण, घोड़े, इत्यादि । कुछ अन्य कहानियों में बाल्य स्वभाव का चित्रण रहता है— प्रकृति प्रेम के बाद वात्सल्य ही उन की रचनाओं की दूसरी मुख्य प्रेरणा है ।

सत्यवती मलिक

भाई-बहन

"माँ जी !...हाय ! माँ जी !...हाय !" एक बार, दो बार; पर तीसरी बार 'हाय !' हाय !' की करुण पुकार सावित्री सहन न कर सकी। कार्बन पेपर और डिजाइन की कापी वहीं कुर्सी पर पटक कर शीघ्र ही उसने बाथ-रूम के दरवाज़े के बाहर खड़े कमल को गोद में उठा लिया और पुचकारते हुए कहा, "बच्चे, सवेरे-सवेरे नहीं रोते।"

"तो निर्मला मेरा गाना क्यों गाती है, और उसने मेरी सारी कमीज़ क्यों छींटे डाल कर गीली कर दी है।"

स्नानागार में अभी तक पतली-सी आवाज में निर्मला गुनगुना रही थी, "एक––लड़का––था––वह रोता––रहता––"

"बड़ी दुष्ट लड़की है। नहा कर बाहर निकले तो सही, ऐसा पीटूँ कि वह भी जाने।" माँ से यह आश्वासन पा कर कमल कपड़े बदलने चला गया।

न ज़ाने कितनी मंगल कामनाओं, भावनाओं और आशीर्वादों को ले कर सावित्री ने अपने भाई के जन्म दिन पर उपहार भेजने के लिए एक श्वेत रशमा कपड़े पर तितली का सुन्दर डिजाइन खींचा है। हल्के नीले, सुनहरे और गहरे लाल रंग के रों के साथ-ही साथ जाने कितनी मीठी स्मृतियाँ

भी उसके अन्तस्थल में उठ-उठ कर कर विंध-सी जा रही है, और अनेक वन, पर्वत, नदी, नाले तथा मैदान के पार दूर से एक मुखाकृति बार-बार नेत्रों के सम्मुख आ कर उस के रोम-रोम को पुलकित कर रही है। कभी ऐसा भी लगने लगता है, मानो सामने दीवार पर लटकी हुई नरेन्द्र की तसवीर हँस कर बोल उठेगी। सावित्री की आँखों में प्रेमाश्रु छलक उठे। तितली का एक पंख काढ़ा जा चुका है; किन्तु दूसरा आरम्भ करने से पूर्व ही कमल की सिसकियों और आँसुओं ने सावित्री को वहाँ से उठने को विवश कर दिया।

स्कूल की चीजों को बेग में लगाते हुए निर्मला के निकट खड़े हो कर सावित्री ने कड़क कर कहा, "निर्मल, तुझे शर्म नहीं आती क्या? इतनी बड़ी हो गयी है! कमल तुझ से पूरे चार वर्ष छोटा है। किसी चीज़ को उसे छूने तक नहीं देती। हर घड़ी वह बेचारा रोता रहता है। अगर उसने तेरे पेन्सिल-बक्स को तनिक देख लिया, तो क्या हुआ?"

निर्मला सिर नीचा किये मुस्करा रही थी। यह देख कर सावित्री का पारा और भी अधिक चढ़ गया। उसने ऊँचे स्वर में कहना शुरू किया, "रानी जी, बड़े होने पर पता चलेगा, जब इन्हीं दुर्लभ सूरतों को देखने के लिए भी तरसोगी। भाई-बहन सदा साथ-साथ नहीं रहते।"

माँ की झिड़कियों ने बालिका के नन्हे मस्तिष्क को एक उलझन में डाल दिया। आश्चर्यान्वित हो वह केवल माँ के क्रुद्ध चेहरे की ओर एक स्थिर, गम्भीर, कुतूहलपूर्ण दृष्टि डाल कर रह गयी।

करीब आधा घंटा बाद किंचित् उदास-सा मुख लिये निर्मला जब कमल को साथ ले कर स्कूल चली गयी, तब सावित्री को अपनी सारी वक्तृता सारहीन प्रतीत होने लगी। सहसा उसे

याद आ लगी कुछ वर्ष पर्व की एक वात । तव वह नरेन्द्र से क्यों रूठ गयी थी ? छि ! एक तुच्छ-सी वात पर...किन्तु आज जो बात तुच्छ जान पड़ती है, उन दिनों उसी तुच्छ, निकृष्ट, ज़रा-सी वात ने इतना उग्र रूप क्यों धारण कर लिया था, जिस के कारण भाई-वहन ने आपस में पूरे एक महीने तक एक बात भी न की थी ! एकाएक सावित्री के चेहरे पर हँसी प्रस्फुटित हो उठी, जव उसे स्मरण हो आया। नरेन्द्र का दिन-रात नये-नये रिकार्ड ला कर ग्रामोफोन पर वजाना और एक दोस्त की दूरवीन माँग कर आते-जाते वहन के कमरे की ओर झाँकना कि किसी तरह इन दोनों चीज़ों का प्रभाव सावित्री पर पड़ रहा है या नहीं ! उसे यह भी याद कर के खूब हँसी आयी कि कैसे वह मौन धारण किये हुए मिठाई की तश्तरी नरेन्द्र के कमरे में रख आती थी ।

टेविल-क्लाथ पुनः हाथ में लेकर काढ़ते हुए सावित्री ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि अब से वह बच्चों को विलकुल डाँट-फटकार नहीं वतायेगी, किन्तु इधर बारह बजे की आधी छुट्टी में खाने के समय फिर कई अभियोग कमल की ओर से मौजूद थे––"निर्मला मुझे अपने साथ-साथ नहीं चलने देती, पीछे छोड़ आती है ! 'मन्दाकिनीर पूर्ण धाराये' के वदले 'कमला-किनीर पूर्ण धाराये' गाना गाती है और गधा कहती है ।"

मामला कुछ गम्भीर न था, और दिन होता, तो शायद निर्मला की इन शरारतों को सावित्री हँसी समझ कर टाल देती ; परन्तु यह उद्‌ड लड़की सवेरे से ही उस के प्रिय तथा आवश्यक कार्य मे बार-बार बाधा डाल रही है । एक हल्की चपत निर्मला के लगाते हुए माँ ने डाँट कर कहा, "बस, कल ही स्कूल से तेरा नाम कटवा दिया जायगा । यह सब अंग्रेज़ी स्कूल की शिक्षा

का ही नतीजा है । ज़रा सी लड़की ने घर-भर में आफ़त मचा रखी है। अभी से भाई-बहनों की शकल-सूरत नहीं भाती, बड़ी होने पर न जाने क्या-क्या करेगी।" फिर थाली में पूरी-तरकारी डाल कर बच्चों के आगे रखते हुए ज़रा धीमे स्वर में कहा, "देखो निर्मला, जब मैं तुम्हारे बराबर की थी, अपने भाई-बहनों को कभी तंग नहीं करती थी, कभी अपने माता-पिता को दुःख नहीं देती थी।" किन्तु यह बात कहते हुए भीतर ही-भीतर सावित्री को कुछ झिझक-सी हो आयी।

"हम दोनों सीता के घर से जुलूस देखेंगे माँ, अच्छा ?" कमल ने विनम्र स्वर में अनुमति चाही।

"नहीं जी, क्या अपनें घर से दिखाई नहीं पड़ता ?" दरवाज़े की ओट में निर्मला खडी थी। "कैसी चालाक लड़की है। इसी गरीब को आगे करती है, जब खुद कुछ कहना होता है। जाओ जाना हो तो। सावित्री ने झुँझला कर उत्तर दिया।

पाँच बजे मुहर्रम का जुलूस निकलने वाला था। पल भर में चौराहे पर सैंकड़ों मनुष्यों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सावित्री ध्यान कभी काले-हरे रंग-बिरंगे वस्त्र पहने जन समूह की ओर और कभी जुलूस के कारण रुकी हुई मोटर-गाड़ियों में बैठे हुए व्यक्तियों की ओर अनायास ही खिच रहा था। और इधर बालिका निर्मला के होश-हवास एकाएक गुम-से हो गये जब उसे सारे घर में कमल की परछाईं तक नज़र न आयी। व्याकुल सी हो, वह एक कमरे से दूसरे में और फिर बरामदे में पंखहीन पक्षी की नाईं फड़फड़ाती हुई दौड़ने लगी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। उसे सब कुछ सुनसान-सा प्रतीत होने लगा। वह माँ से कई बार छोटे बच्चों के भीड़-भाड़ में

खो जाने का हाल सुन चुकी है। आह—उस का भैया—कमल वह क्या करे?

नीचे की सड़क पर भाँति-भाँति के रंग-विरंगे खिलौने, नये-नये ढंग के गुब्बारे, कागज़ के पंखे, पतंग, और भिन्न-भिन्न प्रकार के सुर निकालते हुए बाजे ला कर बेचने वालों ने बाल जगत के प्रति एक सम्मोहन जाल-सा बिछा रखा है। कुछ दूर से मानो नेपथ्य में से ढम।ढम-ढमाढम ढोल बाजों की ध्वनि बढ़ती आ रही है। निर्मला इन सब चित्ताकर्षक चीज़ों को बिना देखे-सुने ही भीड़-भाड़ को चीरता हुई वेगपूर्वक भागती-भागती सीता के घर भी हो आयी, पर कमल तो वहाँ भी नहीं है। रोते-रोते निर्मला की आँखें सूज आयीं, चेहरे का रंग सफेद पड़ गया। आखिर वह हिचकियाँ लेते हुए रुँधे गले से माँ के पास जा कर बोला, "कमल...कमल तो सीता के घर भी नहीं है।"

सावित्री का तन-बदन एक बार सहसा काँप उठा। क्षण-भर में भीड़, मोटर और गाड़ियों के भय से कई अनिष्ट आशंकाएँ उस की आँखो के आगे घूम–सी गयीं; किन्तु वह अपनी भीरु लड़के की नस-नस से परिचित थी। उसे पूरा विश्वास था कि कमल ज़रूर ही कहीं–न–कहीं किसी दुकान पर खड़ा हो कर अथवा किसीं नौकर के साथ जुलूस देख रहा होगा, फिर भी उस ने फूट-फूट कर रोती हुई निर्मला को हृदय से नहीं लगाया और न उसे धीरज ही बँधाया, बल्कि आश्चर्यचकित–सी हो, आश्वासन का एक शब्द तक कहे बिना मानो वह लड़की की रुलाई को समझने का प्रयत्न कर रही थी। रह-रह कर एक संदेह-सा उस के मन में उठने लगा—मुझ से भी अधिक...भला माँ के दिल से भी ज्यादा—किसी और को दर्द-चिन्ता हो सकती है? और यह निर्मला तो दिन-रात कमल को सताया करती है!

जुलूस समाप्त हो गया। क्रमशः दर्शकों के झुँड भी छिन्न-

भिन्न होने लगे । मोटरगाड़ियों का धड़ाधड़ आना जाना पूर्ववत जारी हो गया । और सामने ही फुटपाथ पर सफेद निकर और सफेद कमीज पहने पड़ोसी डाक्टर साहब के नौकर के हाथ में हाथ लटकाये कमलकिशोर घर आता हुआ दिखाई दिया ।

सीढ़ियों में से फिर सिसिकने की आवाज़ सुन कर सावित्री ने देखा तो मन्त्रमुग्ध सी रह गयी । कमल को दृढ़ पाश में बाँधे निर्मला दुगने वेग से रो रही है । उस के कोमल गुलाबी गाल मोटे मोटे आँसुओं से भीगे जा रहे हैं और वह बार बार कमल का मुख चूम चूम कर कह रही है—"पगले ! तू कहाँ चला गया था ? गधे ! तू क्यों चला गया था ?"

सावित्री का हृदय उमड़ आया, पुनीत प्रेम के इस दृश्य को देख कर एक आन्नद की धारा-सी उस के अन्तस्तल में वहने लगी । झरते हुए आँसुओं के साथ उस ने कमल की जगह निर्मला को छाती से लगा कर उस का मुँह चूम लिया और कहा, "बेटा, वहन को प्यार करो । देखो, वह तुम्हारी खातिर कितनी रोयी है । तुम बिना कहे क्यों चले जाते हो ?"

निर्मला का इतना आदर होते देख कर कमल वोल उठा, "तो क्या मैं वहाँ नहीं रोया था ?"

"तुम क्यों रोये थे जी ?"...माँ ने कुतूहलवश पूछा ।

मुझे गुब्बारा लेना था, पैसा नहीं था ।"

निर्मला ने दौड़ कर अपनी जमा की हुई चवन्नी के पैसों से दो गुब्बारे और दो कागज के खिलौने कमल को ला कर दिये और एक बार फिर उसे भुजाओं में जकड़ कर कहा, "गधे ! तू चला क्यों गया था ?"

प्रभाकर माचवे

(जन्म सन् १६१६)

रतलाम औंर आगरा विश्वविद्यालय में शिक्षा पायी ; साहित्यरत्न, दर्शन और अँग्रेज़ी में एम० ए० कर के कालेज में अध्यापक हुए पर कुछ वर्ष वाद वह काम छोड़ कर सरकारी नौकरी कर ली।

प्रभाकर ज़ी की प्रतिभा आशु और बहुमुखी है, उन का अध्ययन विस्तीर्ण। उन का लेखन बड़ी त्वरा से होंता है, और कविता, कहानी, निवन्ध, आलोचना, नाटक--सभी पर उन्हों ने हाथ आज़माया है। एक लघु उपन्यास भी छपा है। माचवे जी का रुझान बौद्धिक और तर्क प्रिय है ; और वर्णन उन के बहुधा प्रभाववादी ही होते हैं। अधिकतर कहानियाँ रेखाचित्र के ढंग की हैं ; और सभी प्रकार के विधान माचवे जी की हस्तामलकवत् हैं। लेखन और भावन की त्वरा के कारण भाषा कुछ अटपटी हो जाया करती ; हैं कुछ इस कारण यह भी है कि माचवे जी जन्मतः महाराष्ट्रीय हैं और मराठी प्रभाव उन की भाषा में बहुधा पाया जाता है। हल्का मनोरंजक गद्य वह बहुत सुन्दर लिखते हैं, व्यंग्य और विडम्बन उनके गद्य की विशेषताएँ हैं।

प्रभाकर माचवे

करेले

शबराती, गरीब, बूढ़ा कुँजड़ा ! उसे यह कल्पना नहीं थी उसकी दूकान के आस-पास जो भीड़ जमा होती वह उस की ताजी सब्जियों के लिए इतनी नहीं, जितनी उस की जरा जवान-सी और शकल सूरत में साफ, खुशनवश लड़की के लिए । कभी कभी वह पड़ोस की फलवाली दूकान का बशीर भद्दी सी फिल्मी तर्ज छेड़ता और फब्ती भी कस देता। मगर सुबराती ने जमाना दूसरा देखा था, वह मुगलों की पुश्तैनी खानदानी नवाबी, उन के ऐश—क्या कहें साहब । एक दिन यह ही तै हुआ कि अँगूरों की सब्जी बने, तो दूसरे दिन उँगली बराबर लौकियों की ही फरमाइश हुई । वह ऐसे ही शाही वक्त हुआ करते थे । न रोजी की फिक्र थी न कर्जे का ख्याल। खाने बनते थे वह-वह बेशकीमती कि क्या कहने । अभी भी याद करता है तो शुबराती गुड़गुड़ी के दो कश और जोर से मार कर अपनी चुन्धी आँखों को और चिपचिपा बना देख मैले कुर्ते की बाँह से पोंछ लेता है । जैसे सपनों का धुआँ बनता हुआ उस की आँखों के आगे एक सब्ज मंजर धीमे अपनी पर्तें खोल कर, थिरक, कर बिलम जाता हो ।

इतने में हमेशा का पंजाबी गाहक आ गया। ऊँचा-तगड़ा जवान बाबू, नाक पर चश्मा, गंजा-सा। "चचिंडे लोगे, हुजूर, अच्चे हैं ताजे। ये परमल चढ़ा दूँ? पालक मेथी, क्या लेंगे?"

इतने में उधर आती एक इसाई मास्टरानी को भाव बताता हुआ, इस झुरियों वाली उम्र में भी शुबराती अपना काम फुर्ती से करता चला जाता। कभी कभी उसे ख्याल हो आता कि बजाय लड़की के अगर उसे एक लड़का होता तो कितना अच्छा होता! दूकान सँभाल लेता। लड़की क्या, परायी हुण्डी है। उस के भरोसे कब तक जिया जा सके है! और इधर ऐसी हवा चली है कि हर महीने दूसरे-तीसरे कहीं मार-काट और कहीं हुल्लड़ की सुनाई देती है, तब से उसका जी बहुत घबड़ा गया है। जो दो चार-सौ कलदार अंटी में हैं, लेकर अपनी हज्ज करने चल दो। कहाँ का पाकिस्तान और कहाँ का हिन्दुस्तान, यही सुबराती सोचता है—इसी वतन में पैदा हुए, यहीं बड़े हुए, यहीं मरेंगे! सुनते हैं हज्ज जाने को भी इजाजत लगती है। खुदा पर भी टिकट लग गया, सुसरा ऐसा बुरा ज़माना!

"गुल ओ गुल! ज़रा तू संभाल लीजो दूकान, मैं निमाज़ पढ़ आऊँ!" लाठी टेकते-टेकते शुबराती चले: उधर इबादत होने लगी और इधर दुकान पर रंगों का आलम जमा हो गया। फूल जहाँ हो वहाँ भौंरे भला न हों, यह कैसे हो सकता है?

पुरानी अँधेरी सीलनदार सब्जी मंडी का बन्द अहाता। ऊपर सिरे में बीच में रोशनदान जहाँ से एक पुरानी जंग खायी हुई फ़ानूस लटकी रहती और कुछ कबूतर गुटरगूँ करते रहते। वहीं दोनों ओर सब्जी की दस-पाँच बड़ी-बड़ी दुकानें, एकाध फल की भी, कोने पर। टोकनी की टोकनी लाल-सफेद मूलियाँ, पत्तों वाली गाजर, गोल-मोल टमाटर, नींबू और करेले, आलू और कद्दू रखे रहते, कहीं कच्चे केले लटकते हुए, कहीं एक-दो

कुम्हड़ । और वहीं उस सारी हरी-पीली-लाल-भूरी पत्तियों–भरी दुनिया के बीच में शाही ठाठ से अपनी गुलाबी दुपट्टे की रूपहली किनारी को ओंठों से दबाये, हाथ में कुहनी तक लाल-हरी चूड़ियाँ और काले पायजामे के नीचे पैरों में चाँदी की छड़ें पहिने बैठी रहती गुल । वैसे उस में कोई विशेषता नहीं थी, कोई वैसा दैवी सौन्दर्य नहीं था, जो सुना गया है कलाकारों को पागल वगैरह बनाया करता है; मगर वह जवान थी, तन्दुरुस्त थी, और साफ उजले रंग में से कहीं–कहीं लाल भी झलक उठती थी, जैसे हथेलियों पर जान सकने की तो कोई गुंजाइश नहीं थी, वे मेंहदी-रंगे थे, परन्तु कपोलों पर, ठोडी पर, नासिकाग्र पर।

गुल सौदा तोलती तब गर्दन को हल्का-सा झटका दे कर उन असंवरे बालों को ऊपर फेंकती, माथे पर का बौर कुछ ऊँचा उठता, और नीली बड़ी आँखों की पुतलियों में कौतूहल और अचरज का मिश्रण-सा झलक जाता । वह तराजू से सौदा तोलते समय ग्राहक को कम माल फुर्ती से दे देने की कला में चतुर थी, और पैसे लेते समय सारा भोलापन भुला कर खूब ठोंक बजा कर दस बार गिन कर हिसाब करती ।

उस दिन कुछ झगड़ा सा उसी दूकान के पास एक फलों की दूकान पर हो गया।

एक शरणार्थी हिन्दू साहब ने कुछ सस्त-सुस्त कह दिया । फलवाले ने दबी जबान कहा—"सरदार जी, पुरानी बातों को दुहराने में क्या रखा है, जो होना था सो हो गया । अब तो कुछ समझदारी की बात करनी चाहिए ।"

'समझदारी सिखाने के लिए आप ही बाकी हैं ? जब-जब वहाँ की बातों की याद आती है, रोआं-रोआं काँप उठता है। समझे ?"

"पर गुस्से की वजह तो दोनों पक्षों की हो सकती है," भीड़ में से किसी आदमी ने छोड़ दिया।

"आप भी ऐसा कहने लगे ? ऐसे-ऐसे बोदे, डरपोक हिन्दू इस मुल्क में बाकी हैं इसी लिए तो—" वह आदमी इतने गुस्से में था कि उसनें जो सौदा लिया था, वह दूकान पर वहीं खाली कर दिया, दो सन्तरे नीचे ढुलक गये।

एक बार सौदा दे देने पर लौटा देने की बात फलवाला चुप-चाप निगल नही सकता था। उस ने फिर वे सब चीज़ें ग्राहक की थैली में भर दीं। बात बढ़ती गयी और—ज़ोर की बातचीत की वजह से भीड़ खासी जमा हो गयी।

पुलिसमैन ने दूर से भीड़ की त्यौड़ियाँ देखीं। जान बचाने वह कहीं खिसक गया।

इस बीच, शुबराती वापिस आ गया था और वह गुल के पास बैठा था इस तरह जैसे ढाल हो। बेचारी साग-सब्ज़ी आदमियों की इस सारी अशान्ति की बड़ी निरीहन्ता में देख रही थी। वह शायद सोच रही हो कि एक कहावत है नहीं—वह सही है: करेले को घी में तलें, शक्कर में घोलें फिर भी वह कड़ुआ ही रहेगा।

सरदार जी हों, चाहे वह लड़ाकू पाकिस्तानी मनोवृत्ति का फ़लवाला, इन सब के दिमाग और दिल करेले की तरह हैं। उन में से कोई मिठास की अपेक्षा करना वैसे ही गलत है! तिस पर करेला और नीम चढ़ा।

ग़रीब गुल और उस का बाप सुबराती! उन्होंने दूसरी दुनिया देखी थी। तब ऐसी कड़आहट आदमी-आदमी के बीच नहीं थी। दुनिया अब बदल गयी है, पर क्या वह सुधर भी गयी है?